होशंगाबाद विज्ञान

सितम्बर 1984 अंक : 14

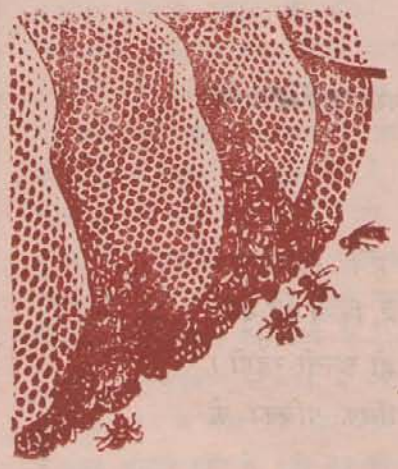

इस अंक में...

- ☐ पाठक लिखते हैं
- ☐ प्रशिक्षण
- ☐ भाषा विज्ञान
- ☐ बच्चों के अधिकार
- ☐ इंटरव्यू
- ☐ अनुवर्तन
- ☐ सवालीराम
- ☐ फ्लेश बेक
- ☐ दो पत्र / लघु प्रश्न
- ☐ समग्र शिक्षा
- ☐ लोक विज्ञान / आपने सुझाया है
- ☐ शिक्षक की दुनिया

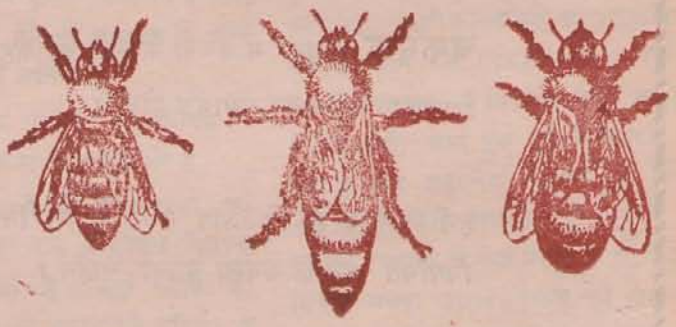

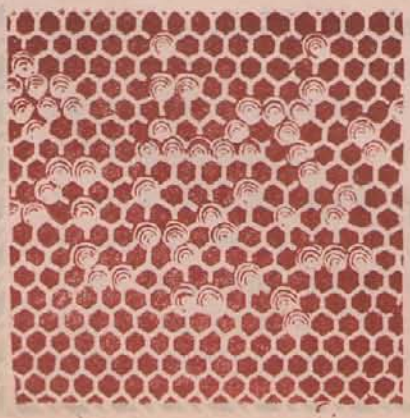

- ☐ अध्यापन के पेशे
- ☐ पहेलियाँ
- ☐ व्यंग्य
- ☐ जीव-जन्तु
- ☐ स्वास्थ्य / लघु कथा
- ☐ खेल-खेल में
- ☐ कविता का पन्ना
- ☐ अपनी चित्रशाला

शीर्षक प्रतियोगिता

आपको याद होगा कि गत वर्ष 'होशंगाबाद विज्ञान बुलेटिन' का नया एवं उपयुक्त नाम सुझाने हेतु एक सौ रुपये के पुरस्कार की घोषणा की गई थी।

पाठकों ने जिस उत्साह से नए नाम सुझाए, उसके लिए हम आभारी हैं। सुझाए गये नामों में से चयन-समिति ने उपयुक्त नाम **चकमक** चुन तो लिया है, किन्तु यह बुलेटिन फिलहाल इसी नाम अर्थात् 'होशंगाबाद विज्ञान' के नाम से ही छपती रहेगी। क्योंकि **चकमक** नाम निकट भविष्य में छपने वाली बच्चों की मासिक पत्रिका के लिए सुरक्षित रखा है।

चकमक पत्रिका में बच्चों के स्तर की कहानियों, लेख, कविताओं, पहेलियों, खेल-खिलवाड़ आदि का समावेश होगा।

हमें विश्वास है कि आप तथा आपके विद्यालय-परिवार के सदस्य इस पत्रिका के नियमित ग्राहक अवश्य बनना चाहेंगे।

हाँ, **चकमक** नाम सुझाने के लिए एक सौ रुपये का पुरस्कार पुणे के श्री अरविन्द गुप्ता को मिला है। पुरस्कार-विजेता श्री गुप्ता वही हैं जिन्होंने माचिस की तीलियों एवं बाल्व ट्यूब के टुकड़ों से 'खेल-खिलवाड़' अध्याय लिखा है।

इन्तजार कीजिए **चकमक** का...

अनुमान का महत्व

इस वर्ष संभागीय पूर्व माध्यमिक परीक्षा 1984 के अन्तर्गत विज्ञान प्रायोगिक परीक्षा लेने इटारसी-सोहागपुर मार्ग पर एक गाँव रामपुर गया था। पिछले दो वर्षों से एक बात दिमाग में घूम रही थी कि क्या प्रचलित विज्ञान पुस्तक के अन्तर्गत कोई ऐसा प्रयोग दिया जा सकता है जो श्रवणेन्द्रीय (कान) एवं मस्तिष्क के संयोजन से किया जा सके। वैसे भी ध्वनि सम्बन्धी प्रयोग में कान की ही अहम् भूमिका होती है। कहीं कोई कहानी पढ़ी थी जिसमें पिता अपने बच्चों की परीक्षा लेता है और पेटी के अंदर रखी वस्तु को बिना पेटी खोले पहचानने को कहता है। ऐसा कुछ फौज में दृश्येन्द्रीय (आँख) के उपयोग से कोई भी स्थान की दूरी अनुमान से बताने के लिए कहा जाता है फिर औसत मान से दूरी तय की जाती है। मैंने इस वर्ष एक प्रश्न (कक्षा 6 के अन्तर्गत) 'अनुमान' के आधार पर ही छात्रों से पूछा था :

प्रश्न : दी हुई माचिस की डिब्बी में कोई वस्तु रखी है। माचिस बिना खोले वस्तु को निम्न बिन्दुओं के आधार पर पहचानो।

(1) वस्तु की संख्या, (2) वस्तु गोल है या चपटी, (3) माचिस में रखी वस्तु की संख्या एवं आकार किस आधार पर पहचाना?

माचिस की डिब्बी में मोती अथवा एक घन सेन्टीमीटर के प्लास्टिक गुटके अलग-अलग एक अथवा दो रखकर माचिस सील कर दी थी। माचिस पर कोडिंग कर वस्तु एवं संख्या लिख दी थी। वही कोड छात्रों की कापी में भी लिख दिए गए।

इस प्रश्न का तीसरा बिन्दु बहुत ही महत्वपूर्ण था जिस में छात्रों ने बहुत ही अच्छा लिखा। उसका भावार्थ कुछ ऐसा था :— (1) खड़-खड़ आवाज सुनाई दी जिससे पता चला कि कोई ठोस पदार्थ है। (2) फिर डिब्बी को धीरे से तिरछा किया, कुछ वस्तु के लुढ़कने की आवाज सुनाई दी, अर्थात् गोल चीज है। (गुटके वाले ने) सरकता हुआ लगा। (3) फिर धीरे से तिरछा करने पर एक ही आवाज आई अर्थात् एक है। दो गुटके या दो मोती वाले ने लिखा कोई दो गोल वस्तु टकराती हुई सुनाई पड़ी।

इसी प्रश्न को पूरक परीक्षा में भी रखा। दोनों स्कूलों को मिलाकर कुल 145 छात्रों ने यह प्रयोग किया जिसमें से 100 छात्रों को 6 अंक मिले। कुछ छात्र तो इतना धीरज नहीं रख सके तो उन्होंने माचिस खोलने का भी प्रयास किया।

इस प्रश्न में मेरे विचार से निम्न बिन्दु स्पष्ट होते है :—

1. ऐसा भी प्रयोग जो अनुमान अथवा कोई कम से कम किट की सहायता से भी किया जा सकता है।
2. किताब के लगभग सभी प्रयोग दृश्येन्द्रीय एवं स्पर्शेन्द्रीय हाथ के संयोजन से किए गए हैं और ऐसे ही संयोजन के प्रश्न परीक्षा में पूछे जाते हैं।
3. हेन्डलिंग आफ एपेरेटस तथा धीरज भी वैज्ञानिक प्रक्रिया का प्रमुख अंग है।
4. ऐसे अनुमान से ही परिकल्पना एवं परिकल्पना ही बाद में नियम सिद्धान्त का रूप लेती है। यहाँ ध्वनि को किसी घटना से जोड़ने की प्रक्रिया है (सहसम्बन्धना)।
5. शिक्षकों को भी थोड़ा विचलित करने की प्रक्रिया है जबकि छात्र निर्भीक ही बने रहते हैं।

अन्त में किन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि यह प्रयोग परीक्षा के अन्तर्गत दी गई स्कीम (जिसमें मूल अवधारणाएँ दी गई है) से भी मेल नहीं खाता है और ऐसी ही कुछ अनुशासनहीनता की धृष्टता करने की मेरी आदत ही बनी हुई है।

ए. के. शुक्ला
शा. बालक. उ. मा. शा. इटारसी

कितने दूर कितने पास

यह पुरानी परम्परा रही है कि किसी भी कार्य को लागू करने की योजना किसी सम्पन्नता युक्त स्थान पर बनती है वहीं से लागू की जाती है और उसका संचालन भी वहीं से होता है। कार्य कितनी दूर सम्पन्न कराया जाता है, दूरी के अनुपात में क्रियान्वय घटता जाता है। यही सिद्धान्त होशंगाबाद विज्ञान कार्यक्रम के बारे में भी चल रहा है। प्रशिक्षण के समय का जोश और शिक्षकों की भागीदारी इसमें निरन्तर कम होती जा रही है। "अनुवर्तन कैसे करें?" संगोष्ठी के दौरान हम इस कार्य के बहुत पास थे परन्तु व्यवहार में इससे दूर हैं। यही हाल परीक्षा प्रश्न-पत्र निर्माण का है। पढ़ाते तो हम हैं सही विधि से, परन्तु परीक्षा लेते हैं परम्परागत विधि से।

संगम केन्द्र से शालाओं को जोड़कर संगोष्ठी का आयोजन करने के पीछे उद्देश्य था सुदूर ग्रामीण अंचलीय शालाओं से सम्पर्क निरंतर बना रहे, उनकी कठिनाइयों का प्रस्तुतीकरण एवं समाधान सब मिलकर करें। पर इस सब में कालान्तर में विषमता आती जा रही है। अनुवर्तन कार्य एक औपचारिकता रह गया है और अनुवर्तक उदासीन हैं। कक्षा 6-7 की परीक्षा प्रणाली वही पुरानी है। दूर की शालाओं में उसी शाला के ही विज्ञान शिक्षक अथवा प्रधान पाठक को अनुवर्तक बना देना उन्हें अन्धकार की ओर ढकेलना है।

बार-बार बात उठाई जाती रही है कि हमें अपना कार्य 70 प्रतिशत के लिए करना है। ये 70 प्रतिशत वे हैं जो पिपरिया, हरदा, होशंगाबाद में नहीं रहते बल्कि वहाँ रहते हैं जहाँ 10 से 20 किलोमीटर तक पैदल यात्रा करते हैं। उन्हें इतनी दूर से बुलाने की अपेक्षा उन तक पहुँचकर या उनके लगभग पास के स्थान पर संगोष्ठी स्थल निश्चित करना अधिक व्यावहारिक है। हमेशा परीक्षा प्रणाली की एकरूपता पर

बरा घोरा

एक सज्जन अपने तीन वर्षीय बालक को को लेकर आये और बड़े गर्व से बोले :

"देखिए मास्साब, इसके टीचर का कमाल। यह कितने सारे अंग्रेजी शब्द जानता है"

इसके बाद उन्होंने पूछना शुरू किया और बालक ने अपनी तोतली बोली में धारा प्रवाह बोलना शुरू किया।

"Rat याने चूहा, Cat याने बिल्ली, Horse याने घोड़ा, Bird याने चिड़िया, Camel याने ऊँट।" आदि

वे अर्थ भरी निगाहों से मेरी ओर देखने लगे। कोई उत्तर न देकर मैंने एक किताब खोली तथा बालक को ऊँट का चित्र दिखाकर पूछा :

"बतलाओ, यह क्या है ?"

बालक ने कुछ देर उसे गौर से देखा और बोला--'बरा-घोरा। शायद उसने कभी ऊँट या उसका चित्र नहीं देखा था किन्तु घोड़े से वह भली भाँति परिचित था।

विचारणीय यह है कि एक तीन वर्षीय बालक का 30-40 अंग्रेजी शब्द रट लेना अधिक महत्व का है या उसकी सृजनात्मक शक्ति को जागृत करना। 'Camel याने ऊंट' उसके लिए एक रटा हुआ निरर्थक शब्द है जबकि 'बरा-घोरा' उसकी स्वयं की रचना है जिसका सृजन उसने अपने पूर्व के आधार पर किया है।

एक शिक्षक

जोर दिया जाता है पर यह एकरूपता बोर्ड की कक्षाओं तक ही सीमित है? अन्य परीक्षाओं के लिए कोई निश्चित परिपाटी अपनाने का औचित्य नहीं है? आज भी प्राथमिक व माध्यमिक (5 व 8 कक्षा छोड़ कर) स्तर की परीक्षाओं का कोई निश्चित ढंग निर्धारित नही है। इनका संचालन व पद्धति वही पुरानी रटाऊ परम्परा पर आधारित है। शहर से जुड़ी शालाएँ तो प्राचार्य मंच से फायदा उठा भी लेती हैं पर उन शालाओं का क्या होगा जो प्राचार्य मंच तो दूर, किसी भी मंच से जुड़ी नहीं हैं? उनका न कोई मंच है और न कोई मसीहा। प्रश्न बोर्ड पर और उत्तर पन्नों पर।

समय-समय पर अधिकारियों के दौरे शिक्षक को मुख्यालय पर रहने को, दैनन्दिनी भरने, मासिक मूल्यांकन की औपचारिकता को निबाहने को मजबूर कर सकते हैं परन्तु समस्याओं का समाधान इससे नहीं होता। आवश्यकता है इन्हें ऐसी इकाई से जोड़ने की जो इनकी समस्याओं का अवलोकन करें, विश्लेषण करें व सर्वसम्मत हल प्रस्तुत करें। यह सब करने के लिए एक सर्वेक्षण शीघ्र ही आवश्यक है। इन शालाओं से संगम केन्द्र की दूरी कम करना जरूरी है। इन्हें इन्हीं के हाल पर छोड़ देना न्याय संगत नहीं है।

शिक्षा में नवाचार का अर्थ मेरी समझ में यह कदापि नहीं है कि उन्हें इसके लिए तैयार करके उनके हाल पर छोड़ दिया जाए। हर दूसरी सीढ़ी पर चढ़ने के पहले, पहली सीढ़ी की मजबूती की परख जरूरी है। इस सिलसिले में मैं और किसी की नहीं, अपनी बात ही कहता हूँ। सन् 1978 से मैंने कक्षा 6, 7 और 8 का विज्ञान शिक्षण प्रशिक्षण लिया है। प्रथम व द्वितीय वर्ष में मैंने अपने छात्रों के सहयोग से इस नवाचार को पूर्णतः आत्मसात करने का भरसक प्रयत्न किया। और कुछ ऐसा भी था कि एक टीम (10-12 देशों के प्रतिनिधि) भी मेरी पूर्व पदस्थ शाला (बालक शाला, केसला) में इस विज्ञान शिक्षण का जायजा लेने आई। परन्तु बाद के वर्षों में सामग्री का अभाव व अपूर्णता से धीरे-धीरे उदासीनता बढ़ती गई। अध्ययन और अध्यापन दोनों औपचारिकता बनती गई। प्रशिक्षण प्राप्त कर अनुवर्तक भी बन गए। इस बीच नबीन शाला, ताकू में स्थानान्तरण हुआ, सोचा था कि नई शाला, एक ही कक्षा, बड़ा अच्छा मौका है इस प्रथम बैच में वैज्ञानिक चिन्तन जगाने का--पर हाय रे भाग्य की विडम्बना और मसीहा कार्यालय की दूरी। एक वर्ष तक किसी ने भी यह नहीं जाना (या जानना चाहा, पता नहीं) कि कोई शाला यह भी है जहाँ प्रयोगात्मक विज्ञान पढ़ाई जा रही है। बेचारे नागेश कागजी घोड़े दौड़ाते-दौड़ाते निराश हो गए। साहबों से संगोष्ठियों में, आफिसों में निवेदन करते-करते बेशर्म बनकर रह गए। पर्यावरण को पाठ्यक्रम मानकर वर्ष भर अध्यापन करते रहे।

मैं अपना ही रोना नहीं रो रहा हूँ। यह स्थिति (इससे भी बदतर) और भी अन्य लोगों के साथ है।

क्या उपर्युक्त स्थिति का जायजा पुनः लेने की आवश्यकता है?

यदि हाँ, तो कौन लेगा इसकी जवाबदारी? यदि नहीं, तो हमें नवाचार की बात करने का क्या अधिकार है?

यदि शीघ्र ही इस स्थिति का चिन्तन नहीं किया गया तो हमारी स्थिति वही होगी जो अपने ही द्वारा बुने गए जाल के भीतर फँसी हुई मकड़ी की होती है।

एम.एल.नागेश
माध्यमिक शाला, ताकू

'होविशिका' : शैक्षिक नवाचार का झरोखा

इस वर्ष उज्जैन में सम्पन्न हुए प्रशिक्षण शिविर में तीन और जिलों के शिक्षक प्रायोगिक विधि पर आधारित होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़ गये हैं। इन्दौर विश्वविद्यालय के जीव-विज्ञान (लाइफ साईसेज) विभाग से सम्बद्ध राणा प्रतापसिंह ने इस प्रशिक्षण शिविर के बारे में अपने विचार इस लेख के माध्यम से प्रस्तुत किये हैं।

"क्या तुमने कभी गिरगिट जितनी छोटी गाय देखी है, या बिच्छू जितना बड़ा खटमल देखा है?" होविशिका की पाठ्य-पुस्तक "बाल वैज्ञानिक" में एक प्रश्न है। शिविर के दौरान हर कक्षा में इस पर बहस शुरू हो जाती तो थमने का नाम ही नहीं लेती। "क्या आदमी हाथी जितना बड़ा हो सकता है, या कुत्ता चीटी जितना छोटा क्यों नहीं हो सकता?" यह कौतूहल तब शान्त हुआ, जब दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिक शास्त्री डा. विजय वर्मा ने सरल एवं दिलचस्प ढंग से बताया कि जीवों के आकार की सीमा एवं उनका स्वरूप जैविक विकास के दौरान परिवेशीय परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित हुई है, और इसे भौतिकी के सामान्य सिद्धान्तों से समझा जा सकता है।

1972 में होशंगाबाद जिले के सोलह माध्यमिक शालाओं में शुरू हुआ। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम पिछले वर्ष से अपने जिले की सीमा तोड़कर उज्जैन, देवास और धार के शाला संकुलों में चल रहा है। यह कार्यक्रम जुलाई, 84' से शाजापुर, मन्दसौर और रतलाम के शाला संकुलों में भी शुरू हो चुका है। इस नई विधि से विज्ञान पढ़ाने के लिए माध्यमिक शाला के करीब 80, उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के 76 एवं महाविद्यालयों के 25 शिक्षकों को शासकीय शिक्षा महाविद्यालय उज्जैन में 1 से 23 जून तक प्रशिक्षण दिया गया। इन जिलों के विद्यालयीन एवं महाविद्यालयीन शिक्षक कार्यक्रम के लिए अनुवर्तक एवं स्रोत दल की भूमिका निभाएंगें। प्रशिक्षण की जिम्मेदारी "एकलव्य" नामक स्वयंसेवी संस्था, जो शासन के वित्तीय सहयोग से स्कूली शिक्षा में नवाचार के कार्यक्रम चला रही है, ने निभायी। हर जिले में एक-एक शाला संकुल लेकर प्रयोग के तौर पर नवाचार पाठ्यक्रम आजमाने की योजना है। जिले के एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय को केन्द्र मानकर उसकी सीमा में आने वाली माध्यमिक शालाओं एवं हर माध्यमिक शाला की सीमा में आने वाली प्राथमिक शालाओं को एक सूत्र में पिरोकर एक संकुल की परिकल्पना की गई है। संकुल में होने वाले नवाचार उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के प्राचार्य के संयोजन में होते हैं। ये संकुल म.प्र. राज्य शैक्षिक शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् भोपाल के अधीन है। इस योजना के तहत फिलहाल माध्यमिक शाला में विज्ञान शिक्षण चल रहा है और भाषा एवं सामाजिक विषयों के लिए तैयारी हो रही है।

इस वर्ष प्रशिक्षण में एक नई बात यह थी कि महाविद्यालयीन एवं स्वेच्छा से आये विश्वविद्यालयीन शिक्षकों के लिए अलग से प्रशिक्षण की योजना थी। इनके साथ पाठ्यक्रम में चुने विषयों और उनके विकास के निर्धारण के सिद्धान्तों की चर्चा करते हुए 'जीन' और 'जेनेटिक कोड' जैसी जीवन की सूक्ष्म संरचना का सरलीकृत स्वरूप रखा। यह विषय जीव विज्ञान के शिक्षकों को जितना रुचिकर लगा, उतना ही भौतिक एवं रसायन विज्ञान के शिक्षकों को भी। शिक्षकों के लिए यह अवधारणा नई थी कि जीव विज्ञान का विशेषज्ञ भौतिकी विज्ञान के सिद्धान्त भी समझ सकता है और इससे उसके अध्ययन में मदद मिल सकती है और इसी तरह की बात दूसरे विषयों के लिए भी लागू होती। "डी.एन.ए. की जटिल संरचना निकालने के लिए किन्हीं बड़े उपकरणों का प्रयोग नहीं हुआ था, यह अध्ययन शाजापुर या धार के किसी कालेज में भी हो सकता था।" यह बात अन्दर तक उतर कर कहीं उद्वेलित कर रही थी। पारम्परिक विधि से विज्ञान पढ़े शिक्षक की, भले ही वह महाविद्यालय या विश्वविद्यालय स्तर का क्यों न हो, एक सीमा साफ दिखती है कि वह अपने विषय और पाठ्यक्रम में इतना सिकुड़ा-सिमटा होता है कि मात्र उसी का ज्ञान और अपने को ज्ञाता मान कर अपने चारों ओर एक "इगो" की कठोर चार दीवारी खड़ी कर लेता है। शुरू के दिनों में इस समूह में यह चार दीवारी साफ नजर आती थी जो शिविर की संस्कृति में लरज-लरज कर भरभराती रही। जब "एकलव्य" के डॉ. मोइज रस्सीवाला ने उनसे चर्चा की कि ब्रह्मांड क्या है? तारे कैसे बनते हैं? मौसम कैसे बनता है? तो उन्हें विस्मय हुआ, "अरे यह सब भी विज्ञान है क्या? इस पर तो हमने कभी सोचा ही नहीं था।" इंजीनियर अरविन्द गुप्ता ने तो अपने पिटारे से बेकार की वस्तुओं; जैसे माचिस की तीलियों और साइकिल की वाल्व टयूब से खेलते-खेलते पदार्थों की भौतिक संरचना और मशीन के सिद्धान्तों को समझा कर सबको हतप्रभ कर दिया।

इन्हीं दिनों योजना आयोग के मुख्य सलाहकार प्रो. यशपाल आये हुए थे और अनौपचारिक रूप से कार्यक्रम देख रहे थे, एवं प्रशिक्षणार्थियों से बातचीत भी कर रहे थे (प्रो. यशपाल इस कार्यक्रम से व्यक्तिगत रूप से सम्बद्ध रहे हैं।) उन्होंने इन्सेट "बी" द्वारा लिए गए मानसून के कुछ चित्र भी दिखाये और अन्तरिक्ष विज्ञान की बातचीत भी की।

सैद्धांतिक व्याख्यानों के कारण इस समूह ने महसूस किया कि वे मुख्य कार्यक्रम से अलग-थलग पड़ गये हैं। बहुत सी चीजें न तो उनके काम की हैं, न इस कार्यक्रम के काम की (वही पारम्परिक मानसिकता)। तय हुआ कि वे (महाविद्यालयीन शिक्षक) अन्य प्रशिक्षणार्थियों के साथ टोलियों में बैठकर प्रयोग करेंगे और चर्चा में शरीक होंगे। यह उन्होंने ही तय किया जो इस विधि की गहरी छाप का परिणाम था। आखिरी दिनों में कुछ और सामान्य विषयों पर पुनः व्याख्यान हुए और "भूख क्यों लगती है?" इस प्रश्न पर अन्त तक मतभेद बना रहा।

श्री विष्णु दिनकर चिंचालकर (गुरुजी) ने अक्षरों से खेल-खेल में विभिन्न आकृतियाँ बनाते हुए इंगति किया कि विज्ञान की तरह कला भी हमारे चारों ओर बिखरी हुई है। उसे खोजना भर है और खोजने की प्रवृत्ति पैदा करना सिर्फ विज्ञान का काम नहीं है। सूखी पत्तियों, सुपारी के दानों, पराठों आदि में खोजी गयी गुरुजी की कला से लोग अभिभूत हो उठे और उनसे यह सुनकर "चाहे तो आप इन्हें ऐसे ही खोज सकते हैं; कइयों के दिल उद्वेलित होकर अपने परिवेश को खोजने को आतुर हो उठे।

कई बार नवाचार कार्यक्रम थोड़े दिनों तक किसी विशेष व्यवस्था के तहत करना अच्छा लगता है; पर कार्यक्षेत्र में आने वाली दैनन्दिन कठिनाइयों से अच्छे-अच्छों का मनोबल टूट जाता है। हमारे शालेय संस्कृति में जहाँ माध्यमिक शाला में कभी किसी ने प्रयोग का मुंह नहीं देखा था, हर कदम पर प्रयोग कराने वाला विज्ञान पढ़ाने में उनको कैसा लगता है? जो विगत एक वर्ष से पढ़ा रहे हैं या इस वर्ष से पढ़ाने वाले हैं, पर अपनी शाला की परिस्थितियों से अवगत हैं और उस परिप्रेक्ष्य में टिप्पणी कर सकते हैं। क्या सोचते हैं वे लोग इस कार्यक्रम के बारे में? लेखक के मन में उनकी प्रतिक्रिया जानने की इच्छा हुई। यूँ तो उठते-बैठते, खाते-पीते या कक्षाओं में प्रयोगों के दौरान थोड़ी बहुत बात हो ही जाती थी पर अन्तिम दिन तमाम लोगों से अलग-अलग बातें करने का मौका लगा।

कन्या माध्यमिक शाला क्र. 1 और क्र. 3 धार की पुष्पलता जैन, कृष्णा सोनी और कुमारी मालती महोदय का कहना है कि बच्चों की पढ़ाई का स्तर इतना खराब है कि वे किताब तक नहीं पढ़ पाते। इस विज्ञान में किताब पढ़कर प्रयोग करना पड़ता है। पहले वाले विज्ञान में तो शिक्षक खड़ा होकर बोल देता था और बच्चे सुन लेते थे, इसलिए यह समस्या कुछ हद तक हल हो जाती थी। शाला क्र.3 में जगह की इतनी कमी है कि बच्चों को टोलियों में बैठाना मुश्किल होता है और एक शिक्षिका हर टोली में जाकर देख नहीं पाती। इनका विचार है कि इस विज्ञान में नई नई बातें सीखने को मिलती हैं इसलिए छात्र-शिक्षक दोनों की रुचि बढ़ती हैं। अनुवर्तन और मासिक गोष्ठियों से भी काफी लाभ मिलता है, पर यह योजना चलानी है तो शिक्षकों की संख्या बढ़ानी चाहिए।

शासकीय माध्यमिक शाला, देहरिया साहू के जयनारायण पटेल, दौलतगंज शा.उ.मा.वि. उज्जैन के कमल नयन चाँदनीवाला और शा. कन्या उ.मा.वि. हाट पिपल्या की कु. कुसुम जैस का विचार है कि इस विधि से छात्र बहुत सवाल पूछने लगे हैं और खुलकर शिक्षक से तर्क भी करने लगे हैं। शाला के बाहर भी इस पर बातचीत करते हैं। पटेल साहब ने इस विधि से पढ़ाते हुए वैज्ञानिक विधि समझी और प्रशिक्षण के दौरान विज्ञान और तकनोलोजी का अन्तर जाना। कु. जैस पिछले वर्ष अपने संकुल की सक्रिय अनुवर्तक रही है। उनका कहना है कि मेरे अनुवर्तन पर जाने से हमारे विद्यालय की पढ़ाई का नुकसान नहीं होता है। वे अपना पीरियड एडजस्ट कर लेती हैं। श्री चाँदनीवाला का भी यही मत है। वे तो इसी विधि से 9 वीं और 10 वीं में अपनी कक्षाओं में विज्ञान पढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं।

शा.क. मा. शाला, नामली (रतलाम) के चन्द्रकांत वायगांवकर, बालमुकुन्द तिवारी और चन्द्रकान्ता शर्मा को यहाँ आकर प्रयोग करना, प्रश्न पूछना, टोलियों में बैठकर सीखना बहुत अच्छा लगा। शा.उ.मा.वि. कमलापुर (देवास) के अमरनाथ योगी को इस बात से बहुत सकून था कि "इस प्रशिक्षण में प्राचार्य ट्रेनर, डी.पी.आई. का कोई आतंक नहीं रहने से दूसरे प्रशिक्षणों में जो मनोवैज्ञानिक दबाव रहता है, वह नहीं रहा।" इसकी बानगी तब मिली जब एस.सी.ई.आर.टी. के निदेशक शरदचन्द्र बेहार ने एक सामूहिक चर्चा के दौरान पूछा कि "क्या यह तरीका प्रजातान्त्रिक है?" तो योगी बोले "साहब प्रजातन्त्र में सिर्फ बोलते हैं करते नहीं, इसमें बोलते भी हैं, और करते भी हैं।" शा.उ.मा.वि, निसरपुर के मनोज माथुर और शा.उ.मा.वि. रतलाम के जी.एस. बघेल का विचार है कि इस ट्रेनिंग में वे क्रियाशील बने रहे, जबकि दूसरी ट्रेनिंगों में निष्क्रिय हो जाते हैं। उनका सुझाव है कि इस विज्ञान को जल्दी से पूरे प्रदेश में लागू कर देना चाहिए। तिरला और धार संकुलों के प्राचार्य के.डी. भार्गव और आर.के. ठाकुर का विचार है कि योजना बहुत अच्छी है पर इसके लिए बजट और स्टाफ की अतिरिक्त व्यवस्था होनी चाहिए जिससे उ.मा.वि. की अपनी पढ़ाई प्रभावित नहीं हो। विद्यालय को मिली निश्चित राशि में से यात्रा भत्ता और स्टेशनरी का खर्चा निकालने में बहुत दिक्कत आती है। उनका विचार है कि संकुल का प्राचार्य प्रशिक्षित हो और स्थानान्तरण वगैरह में यह ध्यान रखा जाना चाहिए, पर शासन इस पर ध्यान नहीं देता।

शालेय शिक्षकों ने प्रशिक्षण के अंतिम दिनों में शिक्षा महाविद्यालय द्वारा आवास शुल्क वसूले जाने के विरोध में एक घन्टे तक कक्षाओं का बहिष्कार कर दिया था। शिविर से वापस जाते समय उनके उत्साह को देखकर विस्मय होता है कि 20-22 दिनों में आदमी की मान्यताएँ क्या इतनी उद्वेलित हो सकती है?

भाषा व भाषा-शिक्षण : कुछ विचार

भाषा हमारे जीवन का शायद उतना ही स्वाभाविक अंग है जितना कि सांस लेना। बिना बातचीत किए, चाहे बोलकर या लिखकर, समाज में शायद कुछ भी करना संभव नहीं है। अपनी बात समझाने के लिए, दूसरे की बात समझने के लिए, नई बातें जानने के लिए, पढ़ने-लिखने के लिए—सभी कुछ के लिए तो हम भाषा का सहारा लेते हैं। इस स्वाभाविकता के ही कारण शायद हम भाषा और उसके उपयोग पर कभी गंभीरता से विचार नहीं कर पाते। यदि कोई बच्चा इतिहास, भूगोल या विज्ञान में पीछे रह जाता है तो हम (शिक्षक हो या पालक) बहुत चिन्तित हो जाते हैं। भाषा के बारे में अक्सर यही सोचा जाता है कि भाषा तो बच्चों को आती ही है, फिर आगे की कक्षा में अपने पसन्द का विषय लेने के लिए आमतौर पर भाषा की उपलब्धि का महत्त्व ही नहीं होता है।

शालाओं में जो थोड़ी बहुत भाषा पढ़ाई भी जाती है, उसका उद्देश्य अक्सर बच्चे को भाषा सिखाना नहीं, बल्कि उसकी भाषा सुधारना है। शालाओं में भाषा की शुद्धता पर अधिक ध्यान दिया जाता है, बजाय इसके कि बच्चा लिखी हुई बात को समझ पाए और अपनी बात कह पाए। भाषा सिखाने के बारे में सोचते समय हम भूल जाते हैं कि भाषा बौद्धिक व मानसिक विकास का आधार भी है और माध्यम भी। अखबार, पत्र-पत्रिकाएँ, साहित्य या शासन के कागजात सभी को समझने के लिए भाषा सीखना जरूरी है। जो भाषा सीखने में पिछड़ गया उसका सामाजिक जीवन के लगभग हर पहलू में पिछड़ना निश्चित है।

लेकिन यह भी एक निर्विवाद सत्य है कि हर बच्चा अपने आसपास बोली जा रही भाषा अच्छी तरह से जानता है। जैसे वह उठना, चलना-फिरना, खाना-पीना आदि सीखता है, वैसे ही वह यह भाषा सीखता है और उसे अपने उपयोग के अनुरूप ढाल लेता है। बच्चा वही भाषा सीखता है जो उसके माता-पिता, सगे-सम्बन्धी, पड़ोसी और मित्र बोलते हैं। इसी भाषा के माध्यम से बच्चा अपनी पहचान बनाता है और परिवार के अलग-अलग कार्यों व गतिविधियों में भाग लेता है। इस भाषा का लिखने-पढ़ने के अलावा सभी तरह से उपयोग करना बच्चा स्वतः सीख लेता है। यह भाषा, चाहे हम उसे बोली कहें या कुछ और, भाषा विज्ञान की दृष्टि से उतनी ही समृद्ध और नियमबद्ध है जितनी कि कोई भी मानकीकृत भाषा। दोनों की अपनी-अपनी ध्वनि और शब्द-संसार होता है। और वाक्य बनाने के अपने-अपने नियम। दोनों का अपना-अपना साहित्य भी हो सकता है और अपनी-अपनी परम्परागत कहानियाँ जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुनाई जाती हैं। किसी भी बोली को लिपि देकर और विभिन्न गतिविधियों के लिए उपयोग करके हम उसे उस स्तर पर ला सकते हैं जिसे आमतौर पर भाषा कहा जाता है। स्पष्ट है कि किसी बोली का भाषा बनना एक भाषिक नहीं, अपितु ऐतिहासिक एवं सामाजिक प्रश्न है। यह अहसास भाषा पढ़ाने वाले शिक्षक के लिए आवश्यक है, जिससे कि वह बच्चों की बोली के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रख पाए और उसे अविकसित या असभ्य मान कर नकार न दे।

यह तो सही है कि हर बोली मानकीकृत भाषा नहीं बन पाती। परन्तु बोलने वालों की धारणाओं, मूल्यों एवं दृष्टिकोणों को हर बोली अपने आप में संजोए रहती है। जिस प्रकार उस बोली को बोलने वालों के समाज व संस्कृति को समझने के लिए उनकी बोली ही एकमात्र सहारा है। उसी प्रकार बोली को समझने के लिए बोलने वालों के समाज और उनकी संस्कृति को समझना आवश्यक है। बच्चों को एक मानकीकृत भाषा सिखाते समय इस बात का अहसास आवश्यक है। यह अहसास होने पर ही हम बच्चों की दुविधा के प्रति संवेदनशील हो पायेंगे और जीने के तरीके से सामंजस्य रखते हुए नई भाषा सिखा पाएँगे। वरना बच्चा इसी समस्या में उलझ कर रह जाएगा कि जो घर में ठीक है वह स्कूल में क्यों गलत है? (विशेषकर उस परिस्थिति में जब उसकी बोली का कोई मान्य स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है।) बोली/भाषा जीवन मूल्यों व संस्कृति से प्रभावित होती है और इसीलिए एक ही स्थान पर अलग-अलग वर्ग के लोगों की बोली में भी अंतर होगा। क्या एक शाला में जहाँ हर आर्थिक स्तर के बच्चे पढ़ते हैं, इस अहसास का महत्त्व नहीं है?

यह हमारा दुर्भाग्य है कि शिक्षा-प्रणाली में, विद्यालयों और पाठ्य-पुस्तकों आदि में प्रयोग होने वाली भाषा घर में और दोस्तों के साथ बोली जाने वाली भाषा से अलग होती है। आमतौर पर तो शालाओं में प्रयुक्त की जाने वाली भाषा का दफ्तरी काम-काज व शालाओं की चार-दिवारी के बाहर बहुत कम उपयोग होता है। जहाँ शाला और बच्चे की आम जिन्दगी को भाषा का एक ही नाम दे दिया जाता है, (जैसा कि मध्यप्रदेश में जहाँ दोनों को हिन्दी कहा जाता है) वहाँ इन दोनों भाषाओं के अन्तर की गंभीरता समझना और भी कठिन हो जाता है और इस भाषा को सीखने में बच्चों की समस्याओं को समझना लगभग असंभव ही है।

स्कूल में अक्सर मानकीकृत भाषा का ही प्रयोग होता है। यह मानकीकृत भाषा अपने-आप में कोई विशेष गुण नहीं रखतीं, पर किसी समय समृद्ध और पढ़े-लिखे तबके की भाषा होने के कारण लिपिबद्ध हो जाती है। साहित्य, शब्दकोष व व्याकरण आदि भी इसी भाषा में लिखे व छापे जाने लगते हैं। संचार और सम्पर्क के सभी स्थापित माध्यमों (जैसे पाठ्य-पुस्तकों, अखबारों, पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन आदि) में इसी भाषा का प्रयोग

होता है और इसी भाषा में पिछड़े होने के कारण बच्चे अन्य विषयों और समाज में पिछड़ जाते हैं। क्या यह आवश्यक है कि सभी बच्चों को यही भाषा सिखाई जाए? (असल में सिखाने के स्थान पर थोपना कहना आज के भाषा पढ़ाने के ढंग को ठीक से चित्रित करेगा।) क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि आज की सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थिति में यह आवश्यक है कि बच्चे किताबों और अखबारों में लिखी बात को पूरी तरह समझें? क्या यह समाज में परिवर्तन लाने के लिए जरूरी नहीं है? यदि समाज और उसकी गतिविधियों को समझना उसमें परिवर्तन लाने का पहला महत्वपूर्ण कदम है, तो क्या यह समझ हमारे पाठ्यक्रम में नहीं दिखनी चाहिए? जबकि हम अपने-आप को परिवर्तन के प्रति कटिबद्ध कहते हैं।

इस सबके बाद हम पूछ सकते हैं कि, क्या हम बच्चे को उसकी भाषा में नहीं पढ़ा सकते? क्या उसकी ही भाषा में अखबार व किताबें नहीं उपलब्ध हो सकतीं? शायद वर्तमान परिस्थितियों में यह व्यावहारिक नहीं है। हम शायद यह तर्क भी दें कि व्यापक स्तर पर संवाद के लिए बच्चों को मानकीकृत भाषा पढ़ना आवश्यक है। माना कि एक ऐसी भाषा का होना जिसे सब समझते-बोलते हों आवश्यक है। परन्तु क्या यह मानकीकृत भाषा उसी तरह से पढ़ाई जानी चाहिए, जिस तरह आजकल हम लोग अपने स्कूलों में पढ़ते-पढ़ाते हैं? क्या मानकीकृत भाषा पढ़ाने के लिए बच्चों की बोली को नकारना आवश्यक है? क्या भाषा-शिक्षण बच्चे के पर्यावरण और उसकी रुचि से जुड़ा हुआ नहीं हो सकता? आप किसी भी पाठ्यपुस्तक को देखें, अक्सर अध्याय ऐसे विषयों पर होंगे जिसमें आमतौर पर बच्चों की कोई रुचि नहीं होती और न ही उन बातों का बच्चों की जिन्दगी से दूर-दराज का कोई संबंध होता है। भाषा ऐसी प्रयोग की जाती है जिसका बच्चों के घर-परिवार की भाषा व उनकी ग्राह्य क्षमता से कोई तालमेल नहीं होता। इस बात का भी आमतौर पर कोई ध्यान नहीं रखा जाता है कि बच्चों को कैसे रंग, चित्र एवं कैसे उदाहरण अच्छे लगेंगे और उनके लिए सार्थक होंगे। शायद यह मान्यता है कि पाठ्यपुस्तकों को आकर्षक बनाना अपने आप में कोई महत्त्व नहीं रखता।

क्या हम ऐसी पाठ्य पुस्तकें नहीं बना सकते जिनका आधार बच्चों की बातचीत हो? उनके अध्याय उनकी रुचि के विषयों पर हों, चित्र एवं उदाहरण ऐसे हों जो उन्होंने ही बनाये हों और जो उन्हें आकर्षित करें। जिसमें लिए गए विषय उनकी समझ व उम्र के अनुरूप हों। भाषा सिखाने के लिए उनकी बोली का इस्तेमाल हो और उनकी बोली के कुछ शब्द भी किताब में हों।

एक नया सवाल जो कि आमतौर पर भाषा की शुद्धता की वकालत करने वालों से है। यदि ऐसी पुस्तकों में बच्चों की भाषा के जिसे हम बोली कहते हैं, कुछ शब्द आ भी जाएँ तो क्या मानकीकृत भाषा बिगड़ जाएगी? क्या अन्य भाषाओं से भाव व अभिव्यक्तियों के ढंग लेकर भाषा अशुद्ध हो जाती है? यदि हम ऐसा मान लें तो अन्य समाजों में उभरे नये-नये विचार हमारी भाषा में कैसे आएंगे? शायद अन्य बोलियों के शब्दों को लेने से हमारी भाषा और समृद्ध होगी।

क्या हमारे लिए यह सोचना आवश्यक नहीं है कि जब बच्चा कोई गलती करता है तो क्यों करता है? क्या उस गलती का कारण समझ कर उसे सिखाना सही तरीका नहीं है? वैसे कोई भी गलतियाँ किए बिना सीख ही नहीं सकता; चाहे वह भाषा हो या और कुछ! गलतियों के आधार पर नई बातें सीखी जाती हैं। भाषा के सन्दर्भ में जिन्हें हम गलतियाँ कहते हैं वह इस बात का भी दर्पण हैं कि बच्चे के चारों तरफ कैसी भाषा प्रयोग की जाती है। जिसे हम आमतौर पर गलतियाँ करना कहते हैं शायद यह भाषा बदलने की प्रक्रिया का आवश्यक अंग भी है। **यदि भाषा स्थायी रूप से मानकीकृत हो जाए और कोई भी नयापन या परिवर्तन न होने दिया जाए तो क्या होगा?** जरा सोचिए।

वास्तव में हमारे लिए मुख्य सवाल यह है कि भाषा पढ़ाने का उद्देश्य क्या है? भाषा सिखाने का हमारे लिए क्या महत्त्व है? बच्चे को भाषा सिखाने में हमारी अपेक्षा क्या है? क्या यही कि वह कुछ चुने हुए विषयों पर जटिल और व्यवस्थित शब्दों में निबंध इत्यादि लिख पाए जो उसे रटने ही पड़ेंगे, चाहे और किसी विषय पर वह दस लाइन भी न लिख सके? क्या बच्चे के लिए यह ज्यादा उपयोगी है कि वह अपनी हर मात्रा और व्याकरण की गलती को सुधारें या यह कि वह शब्दों और वाक्य संरचना के लचीलेपन और विविधता का अहसास करे? भाषा सीखने, बच्चे की स्वतंत्र अभिव्यक्ति का विकास और भाषा के लचीलेपन का इस्तेमाल करने की क्षमता, मात्रा और व्याकरण की शुद्धता से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। क्या यह आवश्यक नहीं है कि प्राथमिक स्तर पर बच्चे को मानकीकृत भाषा सिखाने की अपेक्षा उसे अपनी भाषा में अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए और धीरे-धीरे एक सामन्जस्य स्थापित करते हुए मानकीकृत भाषा सिखाई जाए?

भाषा और भाषा सिखने के बारे में कुछ विचार यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं। इसके अलावा कई और पहलू, जैसे बच्चों में उम्र के साथ ग्राह्य शक्ति का विकास, उनके सीखने के ढंग का अध्ययन और शिक्षण में इस विश्लेषण का उपयोग, उसकी भाषा के विकास के लिए रोचक बाल पाठ्य-सामग्री की उपलब्धि आदि महत्वपूर्ण हैं, जिनके बारे में यहाँ कुछ नहीं कहा गया है। हमारा भाषा-शिक्षकों और भाषा-शिक्षण में रुचि लेने वालों से निवेदन है कि वे भाषा-शिक्षण पर अपने विचार हमें भेजें।

सम्पर्क– **रमाकान्त अग्निहोत्री**
एकलव्य, **हृदयकान्त दीवान**
5, आनन्दनगर,
होशंगाबाद–461 001

❖

गुरुजी मारे धम-धम, विद्या आए छम-छम

होशंगाबाद के बनखेड़ी ब्लाक में पलिया पिपरियाँ गाँव है। यहाँ लगभग ढाई सौ परिवार होंगे। इस गाँव की जनसंख्या लगभग डेढ़ हजार होगी। यहाँ के अधिकांश लोग मजदूरी करते हैं। आधे से कम लोग खेती करते हैं। यहाँ प्राथमिक स्कूल भी है। जिसमें दो शिक्षक और एक शिक्षिका पढ़ाती है। यहाँ लगभग पहली में 50, दूसरी में 40, तीसरी में 30, चौथी में 15 व पाँचवीं में 10, इतने बच्चे पढ़ते हैं। इनमें से अधिकतर बच्चे किसान व पटेलों (जो घर में सम्पन्न हैं) के पढ़ते हैं और कुछ लड़के मजदूरों के भी पढ़ते हैं। और जो बच्चे स्कूल जाना चाहते भी हैं तो उन्हें स्कूल में डर लगता है, क्यों ? क्योंकि यहाँ के शिक्षक बच्चों को बड़ी बेरहमी से बैलों जैसे पीटते हैं। इसलिए जो बच्चे स्कूल जाते भी थे वे भी पिटाई को देखकर डर के मारे स्कूल का नाम सुनकर रोने लगते हैं। कई बच्चों के तो माँ-बाप उन्हें स्कूल छोड़ने के लिए आते हैं। परन्तु बच्चों के लिए तो स्कूल एक हउआ (साँप) है। उनको पढ़ाई में लाड़ प्यार की जगह पिटाई खानी पड़ती है। ऐसी कई घटनाएँ इस गाँव में हो चुकी हैं। किसी बच्चे को फेंककर रूल मार दिया तो सिर फूट गया, किसी को पेट में घूसा मारा तो पेट दर्द करता है। किसी का कान तान दिया तो खून बह रहा है। किसी के बाल उखाड़ दिये तो सिर दर्द करता है। इन सब कारणों से अधिकांश बच्चे स्कूल जाने के बजाय बेहतर यह समझते हैं कि हम तो किसी किसान या पटेल के घर गाय चराकर पेट पाल लेंगे। ऐसे पढ़ने से क्या फायदा ?

कुछ पालकों का भी यही मत है कि ऐसी शिक्षा किस काम की जिससे बच्चे लँगड़े, लूले हों। ऐसा बहुत दिनों से इस स्कूल में चला आ रहा है। इसी से गाँव के बच्चों के दिमाग पर बहुत बुरा असर हो रहा है। और यहाँ के पढ़ाने का तरीका भी देखो—एक बच्चे को (जो होशियार हो) खड़ा कर कह दिया कि सबसे पाठ पढ़वाओ। अगर किसी से पढ़ते नही बने तो साले को मेरे पास लाओ। वह बच्चा सबसे पाठ पढ़वाता है और गुरुजी बैठे रहते हैं। जिसे पढ़ते नहीं बना तो गुरुजी के पास पेश करता है। गुरुजी उसको मार पीट कर कह देते—कुंजी में से उतार लेना। गुरुजी के मारने के कारण भी अजीब हैं।

टोपी न लगाना जबकि आसपास किसी स्कूल में नहीं लगवाते, डिरेस पहनकर न न आना आदि-आदि। ऐसे-ऐसे गुरुजी ने पिटाई को और तेज कर दिया तब तो छात्रों से सहा नहीं गया। करीब 10–15 वर्ष की उम्र के बच्चों ने इकट्ठे होकर बातचीत की, अब तो हम गुरुजी की शिकायत साहब से करेंगे। एक लड़के ने कहा गुरुजी को पता चल गया तो खाल फोड़ देंगे। कई लड़कों ने उत्तर दिया कि यह तुम कौन-सी नई बात कह रहे हो। वे ऐसे कह रहे थे जैसे वे पिटने के आदी हो गये हैं। हम तो शिकायत जरुर करेंगे। शुरूआत में तो 9–10 लड़के ही इसके लिए तैयार हुए, बाद में 15–20 लड़के तैयार हुए। उन्हीं में से दो लड़कों ने कहा हम साहब से शिकायत नहीं करेंगे। पहले एक बार फिर गुरुजी को चेतावनी दी जाय कि वे इतने बेरहमी से न पीटें। इसके साथ ही यह तय हुआ कि बच्चों के पिताजी भी स्कूल जाकर पूछे। और अधिकतर बच्चों ने पालकों से यह बात कह दी। और फिर रात में पालकों ने एक मीटिंग की। उसमें पालकों का यही कहना था कि बिना मारे तो बच्चा पढ़ ही नहीं सकता। वहीं पर एक सज्जन बैठे थे उन्होंने कहा जबलपुर में मेरी लड़की पढ़ती है। वहाँ के शिक्षक बिलकुल नहीं मारते। मेरी बच्ची को पढ़ना लिखना भी आता है। मैं तो इस बात को नहीं मानता कि बिना पिटाई के पढ़ाई नहीं होती। फिर भी गाँव में यह कहावत बहुत प्रचलित है "गुरुजी मारे धम-धम, विद्या आये छम-छम"। इस कहावत को गाँव में स्कूल में गुरुजी ने बार-बार कहा है इसलिए भी पालक भ्रम में पड़े थे कि अगर गुरुजी मारे नहीं तो विद्या आ नही सकती। मगर कई पालक इसके विरोध में थे। फिर यह बात भी हुई कि जितने बेरहमी से गुरुजी मारते हैं उतना शायद ही कोई मारे। फिर कई लोगों ने यह भी कहा कि शहरों में तो बिल्कुल नहीं मारते वहाँ के लड़के भी पढ़ते हैं इससे लोगों को समझने में मदद हुई। अंत में यह निर्णय लिया गया कि कल दोपहर को 1½ बजे स्कूल जायेंगे। दूसरे दिन 10-11 बजे से ही बरसात शुरू हो गई। इसलिए कुछ बच्चों के पालक तो आये और कुछ बच्चों के पालक नहीं आ सके। जब इन सारी बातों का पता गुरुजी को चला तो वे घबड़ाये और वे अपने दूसरे साथी शिक्षक को दोष देने लगे। तुमने ऐसा करवाया है नहीं तो आज तक किसी ने मेरी शिकायत नहीं की। वे एक दूसरे पर गुस्सा होते रहे। और साथ में ही बच्चों

(शेष पृष्ठ 12 पर)

मोहनलाल : औपचारिकेत्तर शिक्षा का प्रतिभाशाली छात्र

औपचारिक शिक्षा या स्कूली शिक्षा (फॉर्मल एज्यूकेशन) में प्रायः छात्र खिलाड़ियों की प्रतिस्पर्धा एवं राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में भाग लेने की बात सुना करते हैं किन्तु ऐसे छात्र जो शिक्षा को सीमित समय (लगभग २ घंटे) प्रतिदिन के हिसाब से ग्रहण करते हैं। कोई खेलने, सांस्कृतिक, साहित्यिक क्रियाओं के लिए कालखंड नाम की कोई चीज नहीं है। शायद इन बच्चों को यह भी मालूम नहीं होगा कि ये उपरोक्त सभी शिक्षा के अंग हैं जो उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए आवश्यक है। इस शिक्षण में यह माना गया है कि शारीरिक विकास तो इन बच्चों का अपने दैनिक व्यवसाय या श्रम से हो ही जाता है। खैर, ऐसा कहा जाता है कि "कोई विशेष प्रतिभा बच्चे में जन्म से ही होती है।" ऐसी ही कुछ बात इस बालक मोहनलाल में भी देखी जा सकती है। बालक मोहनलाल बुनियादी (महिला) प्रशिक्षण संस्था भोपाल के औपचारिकेत्तर केन्द्र का छात्र है जो देखने में स्वस्थ एवं संक्षिप्त भाषी दिखा।

प्रश्न : तुम्हारा नाम क्या है ?

उत्तर : मोहनलाल।

प्रश्न : तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?

उत्तर : परसादीलाल।

प्रश्न : तुम्हारी उम्र कितनी है ?

उत्तर : 12 वर्ष।

प्रश्न : कौन-सी कक्षा में पढ़ते हो ?

उत्तर : औपचारिकेत्तर की पाँचवीं।

प्रश्न : तुम्हारी जाति क्या है ?

उत्तर : भोई।

प्रश्न : तुम्हारे पिताजी क्या काम करते हैं ?

उत्तर : मछली मारना और बेचना।

प्रश्न : मछली कहाँ मारते हैं ?

उत्तर : छोटे तालाब में।

प्रश्न : तुम यहाँ पढ़ने आने के पहले क्या करते हो ?

उत्तर : सुबह पाँच बजे उठ जाता हूँ, जाल खोलकर घर ले आता हूँ, सात बज जाते हैं, यहाँ पढ़ने आ जाता हूँ। यहाँ 9 से 9-30 तक पढ़ता हूँ।

(टिप्पणी : उत्तर काफी स्पष्ट व सटीक-सा लगता है।)

प्रश्न : यहाँ से लौटकर क्या करते हो ?

उत्तर : दिन भर जाल सुलझाता हूँ।

प्रश्न : हमने सुना है तुम अच्छा तैर लेते हो। तैरना कब से जानते हो ?

उत्तर : छः साल की उम्र से।

प्रश्न : यह तैरने का अभ्यास कहाँ और कब करते हो ?

उत्तर : प्रकाश तरण पुष्कर, टी. टी. नगर में।

प्रश्न : तुम्हारे घर से यह पुष्कर (तैराकी स्थल) कितनी दूरी पर है ?

उत्तर : बहुत दूर।

प्रश्न : तरण पुष्कर में अभ्यास कब करते हो ?

उत्तर : शाम को पाँच बजे से सात बजे तक।

प्रश्न : तुम आना जाना कैसे करते हो ?

उत्तर : कभी बस-टेम्पो से, कभी पैदल ही।

प्रश्न : तुम्हें वहाँ कौन तैराने का अभ्यास कराता है ?

उत्तर : श्री नेमा सर।

प्रश्न : तुम्हें कौन-कौन से प्रकार का तैरना आता है ?

उत्तर : चारों प्रकार का (बैकस्ट्रोक, फ्रीस्टाइल, बटरफ्लाई और ब्रेस्ट-स्ट्रोक)।

प्रश्न : तुम सबसे पहले तैरने के लिए कहाँ गए थे ?

उत्तर : भिलाई, 1982 में राज्यस्तरीय प्रतियोगिता में।

प्रश्न : वहाँ क्या स्थान रहा ?

उत्तर : प्रथम।

प्रश्न : किस प्रतियोगिता में भाग लिया ?

उत्तर : 100 मीटर बैकस्ट्रोक में।

प्रश्न : क्या इसके बाद आगे प्रतियोगिता में भाग लिया ?

उत्तर : हाँ, दिल्ली। चौथा नम्बर लगा।

प्रश्न : भिलाई एवं दिल्ली में कहीं घूमे-फिरे थे।

उत्तर : अपने दोस्तों के साथ बाजार घूमा, भिलाई में कारखाना देखा।

प्रश्न : दिल्ली में, क्या देखा ?

उत्तर : बाजार।

प्रश्न : खाना एवं घूमने का खर्च कौन देता था ?

उत्तर : खाना तो वहीं से मिलता था किन्तु घूमने का खर्च अपनी जेब से।

प्रश्न : पिछले वर्ष कोई प्रतियोगिता में कहीं गये थे ?

उत्तर : सितम्बर में इंदौर।

प्रश्न : वहाँ किस प्रकार की तैराकी में भाग लिया और क्या स्थान रहा ?

उत्तर : 200 मीटर फ्री स्टाइल में, प्रथम ।

प्रश्न : पिछले वर्ष तुमने बैकस्ट्रोक तैराकी में भाग लिया था किन्तु इस वर्ष फ्री स्टाइल तैराकी में–ऐसा क्यों ?

उत्तर : तैरने वाले लड़कों को देखकर जिसमें आगे आ जाएँगे चुन लेते हैं ।

प्रश्न : तैरने का शौक एवं प्रतिस्पर्धा में भाग लेने की प्रेरणा कहाँ से मिली ?

उत्तर : हमारे एक दोस्त हीरालाल रैकवार से । वह दिल्ली, कलकत्ता आदि स्थानों में घूमा तो मैंने भी सोचा मेहनत करूंगा और घूमूंगा ?

प्रश्न : आगे चलकर क्या करोगे ?

उत्तर : पढ़ना, मछली मारने का धंधा और तैरने का अभ्यास करूँगा ।

× × ×

उसको बहुत-बहुत बधाई एवं उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाओं के साथ उससे रुकसत ली । घर आकर कुछ बातें मेरे दिमाग में घूमने लगी :

1. इस देश में प्रतिभा की कमी नहीं है, केवल सही खोज एवं चुनाव की आवश्यकता है । शहरी क्षेत्र के बजाय ग्रामीण क्षेत्र में स्वच्छंद प्रकृति के बालक, बालिका का स्वास्थ्य तुलनात्मक रूप से बेहतर होता है । अतः क्रीड़ा के लिए गाँव में छिपी प्रतिभा को खोज निकालना होगा ।

2. छात्र मोहनलाल का चयन एक संयोग ही रहा जिसे रैकवार जैसा प्रेरक एवं तरण-पुष्कर की सुविधा मिल गई अन्यथा इस प्रदेश में ही मोहनलाल जैसे अनेक बच्चे होंगे जो नर्मदा, ताप्ति, बेतवा, क्षिप्रा आदि में तैरते होंगे और समय के साथ उन्हें बिना विशेष पहचान मिले ही रह जाना पड़ेगा ।

3. औपचारिकेत्तर शिक्षा केन्द्र या आदिम जाति कल्याण के स्कूलों में अध्ययनरत शालाओं से छात्र-छात्राओं का चयन करना चाहिए क्योंकि ये शिक्षा-स्थल दूरस्थ अंचलों के गाँव (क्षेत्र) में स्थित होते हैं ।

4. ऐसे प्रतिभासम्पन्न छात्र-छात्राओं के चुनाव जिस किसी शिक्षक या शिक्षिका द्वारा हो, उन्हें पुरस्कृत करना चाहिए ।

5. ऐसे प्रतिभावान बच्चों से सीधे हॉकी या क्रिकेट खेलने की अपेक्षा करना एक बुद्धिमत्तापूर्ण कदम नहीं होगा, जबकि ऐसी कुछ ग्रामीण प्रतिस्पर्धाएँ राष्ट्रीय स्तर तक होती हैं जिसमें फर्जी प्रमाण पत्रों की सहायता से अधिकांश शहरी बच्चे खेलते हैं । यह स्पर्धा हॉकी, फुटबाल, जैसे खेलों की होती है । इसके विपरीत तैराकी, कबड्डी या पर्यावरण के खेलकूद की प्रतिस्पर्धा होनी चाहिए । उपयुक्त बच्चों को किसी कोचिंग हॉस्टेल में रखकर बाद में अन्य खेलों में उसको तैयार कर सकते हैं ।

6. हमें यह भी देखना चाहिए कि हमारी मंशा उसकी प्रतिभा का शोषण करना तो नहीं है । अतः उनके उज्ज्वल भविष्य को बनाने की जिम्मेदारी लेना होगी । यह एक प्रमुख कारण है जिससे जब छात्र खेलने में रूचि लेता है उसके पालक उस बच्चे को पढ़ाने के लिए बाध्य करते हैं । यदि वह कुछ पढ़-लिख लेगा तो कोई न कोई नौकरी तो अवश्य मिल जाएगी, किन्तु खेलने-कूदने में कुछ नहीं मिलेगा । इस मान्यता को तोड़ना भी आवश्यक-सा प्रतीत होता है । बच्चे की रूचि के अनुकूल ही उसे और अधिक निखार देना चाहिए ।

उपरोक्त साक्षात्कार से यह बात स्पष्ट हुई कि छात्र ने अपने पैसे से विभिन्न शहरों के बाजार देखे । इसके लिए प्रभारी शिक्षक को ऐसे बच्चों के साथ रहना चाहिए और घुमाते हुए ज्ञान देना चाहिए । जैसे इस स्थान का बाजार और अपने शहर/गाँव के बाजार में कौन बड़ा है ? कौन-सा बाजार (इस शहर या अपना शहर/गाँव का) अधिक व्यवस्थित है ? क्यों ? सड़क सम्बन्धी जानकारी हो सकती है । पर्यटन से मिलने वाले व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक लाभ भी दिए जा सकते हैं ।

ए. के. शुक्ला,

शा. बालक. उ. मा. शाला, इटारसी

मासिक गोष्ठियाँ : होशंगाबाद

मासिक गोष्ठी में यह कोशिश की जाती रही है कि उस माह में पढ़ाए गए अध्याय व अगले माह में पढ़ाए जाने वाले अध्यायों के संबंध में शिक्षकों में सामूहिक चर्चा हो। इस चर्चा में अध्यायों में विषय-वस्तु को लेकर आई दिक्कतें, कक्षा में उभरे नए सवाल व पाठ्य पुस्तक या उसमें दिए गए किसी प्रयोग को बदलने या सुधारने के संदर्भ में नये विचार सामने आए। ऐसी ही चर्चाओं से मिले अनुभवों व विचारों से कार्यक्रम को निरंतर अधिक समृद्ध बनाया जा सकता है।

पिछले साल होशंगाबाद में सत्र के शुरू में मासिक गोष्ठियों में ज्यादातर चर्चाएँ प्रशासनिक मुद्दों को लेकर हुई। संगम केन्द्रों पर आई अनुवर्तन रिपोर्टों के आधार पर बनाए गए एजेन्डा में प्रशासनिक मुद्दों की बहुतायत होती थी। बहुत से संगम केन्द्रों पर तो मासिक गोष्ठी के समय तक अनुवर्तन रिपोर्ट ही नहीं पहुँच पाती थी और उनसे एजेन्डा बनाने का सवाल ही नहीं उठता था। जो पहुँचती भी थी उसमें इस प्रकार की जानकारी ही नहीं होती थी जिसके आधार पर एक व्यवस्थित शैक्षणिक एजेन्डा बनाया जा सके। कुछ संगम केन्द्रों पर, जहाँ अनुवर्तन रिपोर्ट आना व उनसे एजेन्डा बनने की प्रक्रिया सुचारू रूप से चली वहाँ भी मासिक गोष्ठी का एजेन्डा सामान स्तर की समस्याओं से आगे नहीं बढ़ पाया। इसी कारण पिछले वर्ष से एकलव्य व किशोर भारती के सदस्यों ने विज्ञान की कुछ मूलभूत अवधारणाओं को अपनी ओर से उठा कर मासिक गोष्ठियों में चर्चा करवाने का प्रयास किया। इस प्रक्रिया में घटबढ़ सन्निकटन, संकर नस्ल, दशमलव आदि पर चर्चाएँ की गई। इसके अलावा कुछ कठिन अध्यायों, जैसे फल और फूल सूक्ष्मदर्शी में से जीव-जगत् (उसके कोशिका मॉडल) आदि पर भी चर्चा हुई। किन्तु इन चर्चाओं का क्रम उस माह में पढ़ाये जाने वाले अध्यायों से नहीं था।

इस वर्ष धार और उज्जैन संगम केन्द्रों की मासिक गोष्ठियों के अनुभव के आधार पर एक शुरूआत की गई। धार व उज्जैन के शाला संकुलों (जो होशंगाबाद के संगम केन्द्रों के तुल्य हैं) में मासिक गोष्ठी में उस माह में पढ़ाए गए अध्यायों व अगले माह पढ़ाए जाने वाले अध्यायों पर बातचीत होती है। इसके अलावा वहाँ पर कुछ रोचक विषयों पर ऐसे व्याख्यान भी आयोजित किए गए जिससे कि शिक्षकों के विषयगत जानकारी में वृद्धि हुई।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए इस वर्ष होशंगाबाद जिले के संगम केन्द्रों पर मासिक गोष्ठियों को अधिक सार्थक बनाने के लिए पूर्व निर्धारित शैक्षणिक एजेन्डा बनाया गया। इसमें कक्षा 6, 7, 8 के अगस्त के माह में पढ़ाए जाने वाले अध्यायों में से एक-एक अध्याय को चुना गया। इन पर लघु प्रश्न व अतिरिक्त जानकारी देने के लिए सामग्री तैयारी की गई। इन लघु प्रश्नों को शिक्षकों ने हल किया और इनके आधार पर उस अध्याय के संदर्भ में विस्तृत चर्चा हुई।

इस सत्र की पहली गोष्ठी में हुई चर्चाओं के कुछ अंश . . . .

होशंगाबाद—गोष्ठी में होशंगाबाद संगम केन्द्र के विभिन्न स्कूलों से लगभग 15 शिक्षक/शिक्षिकाओं ने भाग लिया। गोष्ठी की शुरूआत "पत्तियों का समूहीकरण" नामक अध्याय से हुई। इस अध्याय के अभ्यास हेतु एक लघु प्रश्न दिया जिसमें दस पत्तियों को लेकर कम से कम 5 गुणधर्मों के आधार पर उनका समूहीकरण करना था। शिक्षक/शिक्षिकाओं ने जो गुणधर्म चुने उसमें से कुछ ये थे—(1) ऊपरी सतह चिकनी (2) बाहरी सतह कटी हुई, (3) डंठल बहुत लम्बा (4) बाहरी सतह सपाट (5) बाहरी सतह लहरदार (6) लम्बी नुकीली (7) लम्बी बिना नोंक वाली (8) बिना कटे किनारे वाली (9) गोल आकार वाली।

"लम्बी नुकीली" तथा "गोल आकार" को लेकर शिक्षक/शिक्षिकाओं में मतभेद रहा। लम्बी किसे कहेंगे ? गोल किसे कहेंगे ? इस विवाद पर चर्चा हुई जिससे स्पष्ट हुआ कि गुणधर्म को स्पष्ट रूप से चुनना चाहिए। एक निश्चित लम्बाई और चौड़ाई के अनुपात के आधार पर उससे अधिक लम्बी पत्ती को लम्बी कह सकते हैं।

इसी प्रकार जामुन/आम की पत्ती की ऊपरी सतह चिकनी है या नहीं ? इस बात पर भी विवाद हुआ। इसके द्वारा यह स्पष्ट हुआ कि एक निश्चित खुरदरेपन वाली पत्ती को ध्यान में रखते हुए उससे अधिक चिकनी सतह वाली पत्ती को "चिकनी सतह" गुणधर्म में रखेंगे तथा शेष को नहीं।

एक प्रश्न यह भी उठा कि वर्गीकरण और समूहीकरण में क्या अन्तर है। एक शिक्षक ने बताया कि वर्गीकरण में एक वस्तु का एक बार ही प्रयोग कर सकते हैं जबकि समूहीकरण में वह कई उपसमूहों में आ सकती है।

एक शिक्षिका ने छठवीं कक्षा के बच्चों को संयुक्त पत्ती से आने वाली परेशानी के संबंध में बताया कि यदि छात्र कनेर की पत्ती को लेकर कक्षा में प्रश्न करता है तो उसे संयुक्त पत्ती और सरल पत्ती का भेद बताया जाना चाहिए या नहीं।

यह तय हुआ कि "छात्र यदि समझ सकता है तो उसे अवश्य ही बताना चाहिए किन्तु यदि प्रश्न सामान्य रूचि का नहीं है तो उस छात्र को अलग से बताना चाहिए। क्योंकि अन्य छात्रों की समझ में वह बात नहीं आ पाएगी। छात्रों को उतना ही बताना है जो वे समझ पाएं।" इस सम्बन्ध में श्री गौर जो कि उ. मा. शाला में पढ़ाते हैं ने जिम्मेदारी ली कि वह अगली गोष्ठी में इस पर चर्चा करेंगे।

सिवनी मालवा—गोष्ठी कक्षा छह के पाठ (बाल वैज्ञानिक) के पत्तियों के समूहीकरण से शुरू हुई।

शिक्षकों ने आमतौर पर समूह **जालीदार विन्यास, समानान्तर विन्यास, नुकीले सिरे,** गोल सिरे, कटे-फटे किनारे, दवा के तौर पर प्रयुक्त होने वाली पत्तियों, हरी पत्तियाँ आदि गुण धर्मों के आधार बनाए थे। कुछ ने एक बीज पत्रीय/द्विबीज पत्रीय आधार लिया था। इस पर एक शिक्षिका ने आपत्ति उठाई।

यह भी स्पष्ट किया गया कि एक बीज पत्रीय द्विबीज पत्रीय की अवधारणा या आधार छठवीं में उपयोग नहीं की जाए।

यह बात साफ हुई कि इस अध्याय का उद्देश्य मात्र पत्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त करना नहीं है। इसका प्रमुख उद्देश्य एक उदाहरण के उपयोग से समूहीकरण की अवधारणा को विकसित करना है।

समूहीकरण की अवधारणा पर भी बात की गई। समूहीकरण करना असल में बहुत-सी चीजों में एक-सा गुणधर्म तलाश करना है। यह स्पष्ट किया गया कि समूहीकरण में एक वस्तु कई समूहों में आ सकती है।

पिपरिया—इस संगम केन्द्र पर हुई बातचीत में किसी शिक्षक द्वारा चुने गए एक गुणधर्म पर बहुत चर्चा हुई। यह गुणधम था "बाँस की पत्ती के समान पत्ती का समूह।" इसके संदर्भ में जायसवाल जी ने कहा कि बाँस के समान पत्ती के समूह का कोई अर्थ नहीं है। वास्तव में कोई भी पत्ती किसी अन्य पत्ती के पूर्णतः समान नहीं हो सकती। एक ही पौधे की पत्तियों में भी कुछ न कुछ अंतर होते हैं। उन्होंने जीव-जगत् में विविधता अध्याय का उदाहरण दिया। यह बात स्पष्ट हुई कि समूह बनाते समय यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि किस गुणधर्म के आधार पर उन्हें एक समान माना गया है। इसी संदर्भ में गोष्ठी में एक और बात सामने आई। इसमें तेंदु पत्ता तोड़ने वाले मजदूरों का उदाहरण लिया गया जो कि पत्तियों के ढेर में से देखकर ही तेंदु पत्ते को पहचान लेते हैं, किन्तु पहचानने के आधार को वे बता नहीं सकते। अनुभव के आधार पर कई चीजों को पहचानने की क्षमता कारीगर सामान्यतः हासिल कर लेते हैं किन्तु उस तरीके को हमेशा समूहीकरण की प्रक्रिया की तरह व्यक्त नहीं कर सकते।

गोष्ठी में एजेन्डा के तीनों मुद्दों को लेने के बाद संगम केन्द्र प्रभारी की पहल पर अनुवर्तन-कर्त्ताओं में एक चर्चा हुई जिसमें अनुवर्तन व अनुवर्तन रिपोर्ट के बारे में बातचीत हुई। इसमें अनुवर्तन की मौजूदा स्थिति को बेहतर बनाने के बारे में विचार विमर्श हुआ।

सभी संगम केन्द्रों पर समूहीकरण, साबुन व डिटेर्जेन्ट बनाने व उनकी कपड़ों को साफ करने की प्रक्रिया में अंतर व "जल मृदु और कठोर" के सन्दर्भ में उनके उपयोग की चर्चा हुई। इसके अलावा प्याज की झिल्ली व टेडपोल की पूंछ को सूक्ष्मदर्शी में से अधिकांश संगम केन्द्रों पर देखा गया। इस संदर्भ में नये खरीदे गए सूक्ष्मदर्शी की उपयुक्तता पर प्रश्न खड़ा हो गया। इस बात पर सभी जगह सहमति व्यक्त की गई कि इस सूक्ष्मदर्शी से डायनम प्रकार के सूक्ष्मदर्शी बहुत अच्छे हैं।

सोहागपुर—यहाँ की मासिक गोष्ठी में वर्गीकरण व समूहीकरण की प्रक्रियाओं को लेकर काफी भ्रम सामने आये। बहुत से शिक्षक एक ही वस्तु को उसके हर अलग-अलग गुणधर्म के आधार पर अलग-अलग समूह में रखने से हिचकिचा रहे थे। जैसे कि रंग के आधार पर पत्तियों के समूहीकरण में उन पत्तियों को जिनमें थोड़ा बहुत लाल रंग था या सफेद रंग के धब्बे थे, वे हरे रंग की पत्तियों के समूह में या लाल रंग की पत्तियों के समूह में नहीं रख रहे थे। कुछ का कहना था कि इसके लिए तो एक नया ही समूह बनाना चाहिए। वैसे एक ही पत्ती को डंठल वाली, जाली विन्यास वाली, कटे किनारे वाली आदि समूहों में रखने में उन्हें दिक्कत नहीं थी। यही बात किट और गोष्ठी स्थल पर उपलब्ध सामग्री के संदर्भ में भी उभरी। डेस्टर व हैडलैंस को लेकर भी काफी विवाद हुआ।

बहुत देर बाद यह बात साफ हुई कि वस्तु को ऐसे सभी समूहों में रखा जा सकता है जिनके गुणधर्म उसमें हैं, चाहे वह उसका प्रमुख गुणधर्म हो या नहीं।

डेस्टर लकड़ी से बनी वस्तुओं के समूह व कपड़े से बनी वस्तुओं के समूह दोनों में ही आएगा। हैंडलैंस कांच से बनी वस्तुओं के समूह व प्लास्टिक से बनी वस्तुओं के समूह में आएगा। जब तक स्पष्ट तौर पर यह न कहा जाए कि, हम एक समूह बना रहे हैं जिसमें ऐसी ही वस्तुएँ रखेंगे जो केवल काँच से बनी हैं, तब तक हैडलैंस को इस समूह में रखना होगा। इसके अलावा अन्य संगम केन्द्रों पर भी चर्चाएँ हुई, जिनमें से उदाहरण के लिए टिमरनी की मासिक गोष्ठी की कुछ बातें प्रस्तुत हैं।

टिमरनी :— यहाँ पर प्राचार्य की पहल पर सत्र की इस पहली गोष्ठी में पिछले साल के अनुभवों पर चर्चा व इस साल के लिए कुछ बातें स्पष्ट करने का प्रयास किया गया।

इसमें शुरूआत पिछले वर्ष की प्रायोगिक परीक्षा के प्रतिवेदनों से हुई। इनसे ऐसा आभास मिलता है कि कुछ शालाओं में परीक्षक से परीक्षा स्थल पर कुछ प्रयोग न देने को कहा गया। इसका कारण यह दिया गया कि शाला में किट का सामान पूरा न होने की वजह से ऐसा करना पड़ेगा। प्राचार्य महोदय ने कहा कि "जिन शालाओं में सामान नहीं था उन्हें संगम केन्द्र को सूचित करना चाहिए था, हम सामान पूरा करने की कोशिश करते।" उन्होंने कहा कि– "यदि शालाओं में आवश्यकता पड़ने पर संगम केन्द्र से कोई सामान नहीं दिया जा सकेगा तो प्रत्येक शाला को ऐसे सामान की सूची लिखित में दी जाएगी, जो उसने माँगा तो था परन्तु संगम केन्द्र से नहीं दिया जा सका।"

यह बात भी सामने आई कि पिछले वर्ष कहीं-कहीं पर 73 बच्चों की एक साथ प्रायोगिक परीक्षा ली गई है। इतनी बड़ी संख्या की एक साथ परीक्षा लेने में कई प्रकार की कठिनाइयाँ सामने आईं। यह दोहराया गया कि 40-45 से अधिक बच्चों की परीक्षा एक साथ न ली जाए। विद्यार्थियों की संख्या अधिक होने पर दो हिस्सों में परीक्षा ली जाए। चूंकि मासिक गोष्ठी में शाला के सभी विज्ञान शिक्षक नहीं आ पाते अतः यह तय हुआ कि गोष्ठी में आए सभी शिक्षक गोष्ठी की विस्तार से रपट लिखें। संगम केन्द्र की ओर से प्राचार्य सभी प्रधान पाठकों को लिखेंगे कि वे एक रजिस्टर बनाएं जिसमें यह प्रतिवेदन लिखा जाए। यह प्रक्रिया पिछले वर्ष पिपरिया की एक मासिक गोष्ठी में सुझाई गई थी। इस प्रकार के रजिस्टर से, जो शिक्षक गोष्ठी में नहीं आ पाते, वे भी गोष्ठी के बारे में जान सकेंगे। संगम केन्द्र ने प्रत्येक शाला में किट की स्थिति का ब्यौरा लिया व उनकी किट सम्बन्धी आवश्यकताएँ माँगी। यह जानकारी भी इकट्ठी की गई कि प्रत्येक शाला में विज्ञान शिक्षक व वर्गों की संख्या क्या है? अनुवर्तनकर्त्ताओं की मदद हेतु सभी शालाओं का कक्षा 6, 7, 8 का टाइम टेबल नोट किया गया।

मासिक गोष्ठी में उपस्थिति को लेकर हुई बातचीत में शिक्षकों ने यह स्वीकारा कि गोष्ठी में विलम्ब से आना उचित नहीं है। प्राचार्य महोदय के सुझाव के अनुसार यह तय किया गया कि शिक्षक दो बार हस्ताक्षर करेंगे, एक आते समय और एक जाते समय। हस्ताक्षर के साथ-साथ वह हस्ताक्षर करने का समय भी लिखेंगे। इस बात पर जोर दिया गया कि इस सत्र में मासिक गोष्ठियाँ समय पर सुचारु रूप से हों।

चूंकि सौभाग्यवश उस परिक्षेत्र के दोनों ए. डी. आई. एस महोदय मासिक गोष्ठी में उपस्थित थे, इसलिए विभिन्न शालाओं की प्रशासनिक समस्याओं के निदान के तरीके की चर्चा की गई।

प्राचार्य महोदय ने एक और महत्वपूर्ण बात कही जिसका सार लगभग निम्नलिखित है: "प्रत्येक शिक्षक से मेरा आग्रह है कि वे मुझे (यानी संगम केन्द्र प्राचार्य) यह बताते रहें कि उन्हें समय-समय पर संगम केन्द्र से किस प्रकार की कार्यवाही की आवश्यकता है।

●

(पृष्ठ 7 का शेष अंश)

को धमकियाँ देते गये कि साले फेल कर देंगे। अलग-अलग लड़कों से कहा क्यों रे [illegible] (भाई) नेतागिरी करने लगे साले, [illegible] में से उगे नहीं हो शिकायत करेंगे। [illegible] रिये (कोटवार) तू भी शिकायत [illegible]। क्यों करने को फिरते हो आखिर, [illegible] फेल तो हमी करेंगे सालों को। एक साल आराम करवा देंगे। साले बड़े हो जाओ फिर बनाना गेंग। इस तरह की धमकियाँ इन छोटे-छोटों को एक कैदी की तरह दी गयी, जैसे उन्होंने कोई बड़ा कसूर किया है। इससे बच्चे डरे तो नहीं, बल्कि [illegible] बढ़ा। अभी भी बच्चों की संघर्ष [illegible] जारी हैं। इसका इतना असर तो शिक्षक पर पड़ा है, फिर पिटाई पहले की अपेक्षा कुछ कम हुई है।

मायाराम सराठे

पलिया पिपरिया

●

सत्तालीराम

बात तो सब शिक्षाविद् करते हैं, पर....

आदरणीय महोदय,

सनम्र निवेदन है कि हम कक्षा 9 वीं की छात्राएँ शा.उ.मा.कन्या शाला, सोहागपुर में अध्ययनरत हैं। हमारी भौतिक शास्त्र लेखक शिवप्रसाद गोयल सन् 1982 में मुद्रित पुस्तक के पृष्ठ 177 में स्पष्ट लिखा है कि पिछली कक्षा में 'ओहम का नियम' का अध्ययन कर चुके हैं। हम आपसे सविनय प्रार्थना करते हैं कि म.प्र. के 45 जिलों में से केवल होशंगाबाद में ही यह नहीं पढ़ाया गया। क्योंकि हमको नवीन विज्ञान, 'होशंगाबाद विज्ञान' पढ़ाई गई थी और उसमें इसका नामोनिशान नहीं है। यह एक अच्छी बात है कि हमारे विज्ञान शिक्षक ने हमें इस नियम की व्याख्या कर उसका सत्यापन उपकरणों को बताते हुए प्रायोगिक विधि से बता दिया। तथा हमने पहली बार वोल्ट मापी, आमापी, धारा नियंत्रक, प्लग आदि के दर्शन किए। हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आठवीं विज्ञान में आप इस अध्याय को जरूर जोड़ें ताकि भविष्य में हमारे छोटे भाई-बहिन होशंगाबाद विज्ञान से उत्तीर्ण होकर आएँ तो उनको परेशानी का सामना न करना पड़े और वे लाभान्वित हो सकें।

हो सकता है कि जहाँ शिक्षक रूढ़िवादी हो और वे इस नियम को न पढ़ाएँ और न ही उपकरण दिखाए तो 9 वीं का अध्ययन 'प्रतिरोधों का संयोजन' समझना उनके लिए मुश्किल है।

इसी तरह रसायन शास्त्र में भी दीगर जिलों के छात्र व छात्राएँ हम से ज्यादा ज्ञान रखते हैं। क्योंकि उनको आठवीं में ही रासायनिक संकेत समीकरण पढ़ा दिए जाते हैं। अतएव इसका भी समावेश होशंगाबाद विज्ञान पुस्तिका में होना चाहिए।

आशा ही नहीं, विश्वास है कि आप हमारे इस सुझाव का स्वागत कर आगामी सत्र से इस अध्याय को होशंगाबाद विज्ञान में जोड़ने की कृपा करेंगे।

कृपया हमारे पत्र का जवाब जरूर दें। द्वारा प्राचार्य अथवा विज्ञान विभाग 9 वीं की नायिका सायरा बानो के नाम पर।

धन्यवाद

हम हैं आपकी आज्ञाकारी शिष्याएँ--

कक्षा 9 की छात्राएँ (भौतिक शास्त्र)
शा.कन्या उ.मा.विद्यालय सोहागपुर
(होशंगाबाद जिला)

प्रिय विद्यार्थियो,

तुमने अपने पत्र में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (होविशिका) नवीं कक्षा के पाठ्यक्रम के तालमेल से सम्बन्धित कुछ प्रश्न उठाए हैं और सुझाव दिए हैं। तुम्हारे पत्र को संक्षेप में निम्नानुसार लिखा जा सकता है :--

1. अन्य जिलों में 'ओहम का नियम' आठवीं कक्षा में पढ़ाया जाता है जबकि होविशिका में नहीं। इस कारण जब होशंगाबाद जिले के विद्यार्थी नवीं कक्षा में पहुँचते हैं तो उन्हें दिक्कत आती है क्योंकि नवीं कक्षा में यह मानकर चला जाता है कि यह नियम पढ़ा दिया गया है।

2. रसायन शास्त्र में सूत्रों का समावेश अन्य जिलों के पाठ्यक्रम में किया गया है जबकि होशंगाबाद जिले के पाठ्यक्रम में नहीं।

इन दोनों प्रश्नों का उत्तर देने की कोशिश यहाँ की जा रही है--

चूंकि तुमने उपरोक्त प्रश्न उठाए हैं तो ऐसा लगता है कि तुमने होशंगाबाद व अन्य जिलों के पाठ्यक्रमों की तुलना की है। तुम्हें इस तुलना में और भी कई अन्तर दिखे होंगे। कई और ऐसी चीजें मिली होंगी जो अन्य जिलों में आठवीं के स्तर पर करवाई जाती हैं और होशंगाबाद जिले में नहीं। साथ ही साथ कई ऐसी भी चीजें हैं जो या तो सिर्फ होशंगाबाद जिले में ही पढ़ाई जाती हैं या होविशिका के पाठ्यक्रम में उन पर ज्यादा जोर दिया जाता है। घटबढ़ और सन्निकटन, आकाश की ओर, सजीव और निर्जीव, वर्गीकरण के नियम एवं संयोग और सम्भाविता उन चीजों के उदाहरण हैं जो अन्य जिलों में पढ़ाई ही नहीं जाती। इसके अलावा दशमलव, दूरी नापना, स्तम्भालेख, क्षेत्रफल व आयतन नापना, नक्शा व ग्राफ बनाना और उन्हें समझना आदि ऐसे हुनर है जिनके सीखने के अभ्यास पर विशेष जोर दिया गया है।

तुम लोगों का सवाल होगा कि ऐसा क्यों किया गया है ? इसी का उत्तर मैं यहाँ देने की कोशिश करूँगा।

तुम यह तो जानती ही हो कि होविशिका एक समूह के प्रयासों का फल है। इस समूह के लोगों की यह समझ है कि आठवीं कक्षा के स्तर तक विज्ञान खोजने की सबसे अच्छी विधि स्वयं करके सीखने की है।

आठवीं कक्षा के बाद सीधे जानकारी देना एक सार्थक व व्यावहारिक तरीका हो सकता है, यदि आठवीं तक बच्चों में तार्किक और प्रायोगिक कौशल विकसित हो गए हों। अन्यथा मात्र जानकारी देने से कोई साफ समझ विकसित नहीं होती, चाहे उसे रट भले लिया जाए। कुछ ऐसी जटिल अवधारणाएँ हैं जो आठवीं तक प्रयोगात्मक विधि से स्पष्ट नहीं

की जा सकती। ऐसी ही कुछ जटिल अवधारणाओं के उदाहरण हैं विभव, विभवांतर, प्रतिरोध, परमाणु संरचना, अणु-सूत्र आदि। वैसे तो अन्य जिलों में यह सारी बातें आठवीं के पाठ्यक्रम में ही शामिल की गई है। किन्तु हायर सेकण्डरी स्कूलों के अनेक अध्यापकों ने, अपने वर्षों के अनुभव के आधार पर हमें बताया है कि इसके बावजूद आठवीं में उत्तीर्ण बच्चों को सामान्यत: इनकी जानकारी व समझ नहीं होती। ये अध्यापक पिछले कई वर्षों से नवीं कक्षा में पढ़ा रहे हैं। इनका कहना है कि नवीं में उन्हें ये सारी बातें नए सिरे से समझानी ही पड़ती है।

एक ओर से यह तथ्य है कि ये अवधारणाएँ आठवीं के स्तर पर प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर नहीं समझायी जा सकती और दूसरी ओर से यह अनुभव भी है कि पारम्परिक ढंग (व्याख्यान विधि या रटन्त विधि) से समझाए जाने के बावजूद नवीं में ये नए सिरे से समझनी ही पड़ती हैं। इन दोनों के आधार पर होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण दल ने यह निर्णय लिया कि इस किस्म की अवधारणाएँ आठवीं स्तर तक शामिल न की जाए। इसके विपरीत यह भी महसूस किया गया कि कुछ ऐसी अवधारणाएँ व कुशलताएँ हैं जो विज्ञान व अन्य विषयों के आगे अध्ययन के लिए नितान्त आवश्यक है और आठवीं के बाद कभी भी नहीं पढ़ाई जाएँगी। इसलिए यह निर्णय लिया गया कि विद्यार्थियों को इनका गहरा अध्ययन और अभ्यास इसी स्तर पर करना चाहिए।

अब तुम्हें शायद समझ में आ गया होगा कि अन्य जिलों में भी जब विद्यार्थी आठवीं उत्तीर्ण कर नवीं में जाते हैं तो अनेक बातें फिर से पढ़ानी पड़ती हैं! तुम्हारे अध्यापक ने भी यही किया। अंतर सिर्फ इतना है कि तुम्हें ये चीजें पहली बार ही पढ़ाई गई। प्रशंसनीय बात तो यह है कि तुम्हारे अध्यापक ने ये बातें तुम्हें प्रयोगात्मक विधि से पढ़ाई, जबकि अन्य जिलों में तो अब भी रटवाने या व्याख्यान देने पर ही जोर दिया जाता है। मुझे विश्वास है कि तुम्हारे अध्यापक अवश्य ही होविशिका की प्रयोगात्मक विधि से विज्ञान पढ़ाने में प्रशिक्षित होंगे या इससे प्रभावित हुए होंगे। मुझे यह भी विश्वास है कि तुमने जिन कुशलताओं का विशेष या अतिरिक्त अध्ययन व अभ्यास आठवीं तक कर लिया है, उनसे तुम्हें नवीं एवं आगे के अध्ययन में बहुत मदद मिलेगी। तुम्हारे शिक्षक को भी इससे मदद मिलेगी।

होशंगाबाद जिले में आठवीं तक विज्ञान पढ़ाने में एक बहुत बड़ा सुधार हुआ है जिसकी बात तो सब शिक्षाविद् करते हैं पर परिवर्तन का कदम अन्यान्य कारणों से नहीं उठाया जाता है। तुम सोचो कि मध्यप्रदेश के अन्य जिलों में तुम्हारे छोटे भाई-बहनों के साथ गलत ढंग से विज्ञान पढ़ाकर कितना बड़ा अन्याय हो रहा होगा। अत: मेरा सुझाव है कि तुम लोग यह कोशिश करो कि अन्य जिलों में आठवीं तक और सभी जिलों के हायर सेकण्डरी स्कूलों में भी विज्ञान पढ़ाने का ढंग बदला जाये, ताकि तुम्हारे छोटे भाई-बहन बेहतर वैज्ञानिक शिक्षा पाकर देश के लिए अधिक उपयोगी नागरिक बन सकें।

आशा है कि तुम्हें अपने प्रश्नों का जवाब मिल गया होगा।

तुम्हारा,

सुशील जोशी,
किशोर भारती,
बनखेड़ी

आवरण पृष्ठ

सामाजिक कीट--मधुमक्खी

मनुष्य के समान कुछ कीट भी अपनी-अपनी विशिष्ट शैली की सामाजिक व्यवस्था के अधीन रहते हैं। इन सामाजिक कीटों में मधुमक्खी, चींटी, दीमक बर्र (ततैया) प्रमुख हैं। किन्तु जहाँ मनुष्य में वर्ग-भेद के कारण स्वार्थ, आपसी वैमनस्य आदि देखा जाता है, वहीं इन सामाजिक कीटों में अपार आपसी सद्भाव एवं अपने लिए न जीकर दूसरों के लिए मर मिटने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

इस अंक के मुख पृष्ठ पर मधुमक्खी के छत्ते का चित्र है। साथ ही छत्ते का एक आवर्धित भाग भी दिया गया है। पूरा छत्ता इसी प्रकार के षटकोणीय कक्षों का बना होता है। छत्ते के चित्र के साथ ही तीन मधुमक्खियाँ श्रमिक, रानी एवं नर (चित्र में बायीं से क्रमशः दायीं ओर) भी दिखलाई गई हैं। इस प्रकार इनके सामाजिक जीवन में एक प्रकार की वर्ण-व्यवस्था है।

एक छत्ते में 15 से 25 हजार मधुमक्खियों का परिवार रहता है। इनमें केवल एक रानी, लगभग 100 नर एवं शेष श्रमिक मक्खियाँ होती हैं। रानी का काम केवल अंडे देना तथा नरों का काम केवल प्रजनन का होता है। श्रमिक मक्खियाँ बाँझ मादाएँ होती हैं। छत्ते का सारा कार्य इन्हीं श्रमिकों के जिम्मे रहता है।

बड़ी उम्र के श्रमिक, दिन भर पौधों से पराग एवं मकरन्द इकट्ठा करके छत्ते में लाते हैं। छोटे उम्र के श्रमिक, पराग एवं मकरन्द को खाते हैं एवं उसे पुन: अपनी लार मिलाकर उगलते हैं। मोटे तौर पर इस क्रिया द्वारा शहद बनता है।

पराग एवं मकरन्द एकत्र करने के लिए श्रमिक मधुमक्खी की एक ट्रिप लगभग 2 कि. मी. की होती है। आधा किलो शहद बनाने के लिए एक मधुमक्खी को 40,000 से 80,000 ट्रिप लगाना होती है। इस हिसाब से यह कुल दूरी, पृथ्वी की करीब दो परिक्रमा के बराबर होगी।

(आवरण पृष्ठ के ब्लाक 'भैया प्रकाशन,' इन्दौर से साभार)

प्रश्न विधि का नहीं है । विज्ञान का नहीं है ।

प्रश्न शिक्षा का है ।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (होविशिका) का म.प्र. में बीजारोपण हुए 12 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। कुल 16 शालाओं में प्रायोगिक स्तर पर आरम्भ करने के पश्चात् इस कार्यक्रम को पूरे होशंगाबाद जिले में लागू करने में ही लगभग ६ वर्ष का क्षेत्रीय परीक्षण (फील्ड टेस्टिंग) आवश्यक हुआ । पिछले दो वर्षों में इस कार्यक्रम ने अपने जनक जिले होशंगाबाद से बाहर निकल कर म.प्र. राज्य के अनेक जिलों में शाला संकुल योजना के माध्यम से कदम बढ़ाये हैं।

होविशिका की कहानी बड़ी रोचक है। इन 12 वर्षों में शैक्षिक नवाचार एवं परिवर्तनों के संदर्भ में अनुभवों का विपुल भंडार भरा हुआ है। इनमें से अधिकांश रपटें, मिनिट्स, अध्ययन, मेमोरेन्डम आदि के रूप में फाइलों में संग्रहीत हैं।

बुलेटिन के इस कॉलम में हम होविशिका के पिछले वर्षों की झलकियाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

इसका आरम्भ रसूलिया (होशंगाबाद) में आयोजित नवम्बर 1975 की एक दिवसीय बैठक की झलकियों से कर रहे हैं। उन दिनों यह कार्यक्रम 16 शालाओं में ही चल रहा था। इस बैठक में 16 शालाओं के शिक्षक एवं स्रोत शिक्षकों ने भाग लिया। म.प्र. के शासकीय महाविद्यालयों से भी पहली बार कुछ शिक्षक इस बैठक के माध्यम से जुड़े।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

विजय वर्मा : दिल्ली में इस कार्यक्रम के संबंध में लोगों से बातचीत हुई। दिल्ली विश्वविद्यालय के अध्यापक माध्यमिक शाला के स्तर पर यह कार्यक्रम उठाएँ, यह प्रस्ताव रखा गया और यू. जी. सी. (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग) ने यह स्वीकार कर लिया। विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम दिल्ली विश्वविद्यालय का एक प्रोग्राम माना गया। पिछले ढाई साल से हम लोग यहाँ आते-जाते रहे हैं।

यह कार्यक्रम क्यों उठाया गया ?

विजय वर्मा : कोई भी आदमी जो शिक्षक है आज भी शिक्षा-प्रणाली से संतुष्ट नहीं है। अगर किसी वैज्ञानिक से पूछें तो पाएंगे कि वह भी विज्ञान शिक्षण से संतुष्ट नहीं है।

वही घिसी-पिटी, रटी चीजें पढ़ाते हैं। आज का विद्यार्थी दस सवाल रट ले तो पास हो जाता है। यह एम.एस-सी. के विद्यार्थियों की बात मैं कर रहा हूँ। खोज की विधि पर शोध नहीं करते। इसका कारण यही है कि हम स्थापित सिद्धान्त पढ़ते आए हैं। खोज करके ज्ञान प्राप्त करने की ट्रेनिंग नहीं है।

इसीलिए शिक्षा का स्तर ऊँचा नहीं है। हम विज्ञान-शिक्षण से कुछ परिवर्तन लाना चाहते हैं। परिवर्तन करना है तो शुरू से करना होगा।

स्कूलों में पढ़ाना शुरू करते हैं तो पुराने तरीके से पढ़ाते हैं।

किसी का सवाल हो सकता है कि विज्ञान शिक्षण में परिवर्तन लाने के लिए होशंगाबाद को ही क्यों चुना गया ? दिल्ली के स्कूलों में भी तो यह कार्यक्रम चलाया जा सकता है। वास्तव में कोई राज्य ऐसा नहीं है जिसमें सरकार कह दे कि आप अपने ढंग से पाठ्यक्रम तैयार कीजिए, हम आपके साथ हैं। दूसरी बात परिवर्तन लाना है तो परिवर्तन ग्रामीण क्षेत्र में हो। शहरों में परिवर्तन का असर कम होगा। पाँच-छः सालों से यह महसूस किया जा रहा है कि इस देश में जो शिक्षा प्रणाली चल रही है उसको छोड़ने को कोई तैयार नहीं है। इसका कारण यह है कि शिक्षा प्रणाली पर जितने निर्णय लिए जाते हैं वे शहरों में लिए जाते हैं। देश भर में एक तरह की शिक्षा प्रणाली हो यह हम चाहते हैं। देश के अस्सी प्रतिशत बच्चे ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। उनको भी वही पढ़ा

रहे हैं जो शहर के बच्चों को पढ़ाते हैं। अस्सी प्रतिशत लोग जो सफलता प्राप्त करते हैं वे शहर में रहते हैं। शहर के बच्चों को ज्यादा फायदा हो यह वे चाहते हैं। सौ में से नब्बे स्कालरशिप उनको दी गई हैं जो दिल्ली, मद्रास, कलकत्ता आदि शहरों में रहते हैं। दिल्ली में पब्लिक स्कूल के बच्चों को स्कॉलरशिप मिलती है। हमारे देश में दिमाग इस श्रेणी में भरा है। बुद्धि किसी एक में ठोस रूप में नहीं है। इसका वितरण समान रूप से है। मेरा व्यक्तिगत विचार है कि हम अपने देश को दस प्रतिशत लोगों से चलवाने की कोशिश कर रहे हैं। जब तक हम इस स्थिति को नहीं बदलते, तब तक हमारे देश की हालत नहीं सुधरेगी।

शिक्षकों तथा स्रोत व्यक्तियों के बीच बातचीत

अनिल सद्गोपाल : म. प्र. शासन कहता है कि इस विज्ञान को और स्कूलों में आप लोग आगे बढ़ाएँ पर हम तो पीछे हट जाते हैं। इस कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए लोग नहीं मिलते। समय देने के लिए कोई तैयार नहीं है। इस कार्यक्रम की पृष्ठभूमि यह है कि हम पहले खुद प्रयोग करके सीखें, कार्यकर्त्ता तैयार करें। इसके बाद शासन से कहें कि हम कार्यक्रम को और स्कूलों में बढ़ाने के लिए तैयार हैं।

प्रश्न : विज्ञान प्रगति कर रहा है। इस पर क्यों जोर दिया जा रहा है कि सब लोग वैज्ञानिक हों। आज हमारी स्थिति ऐसी है कि हम विदेशी वैज्ञानिकों से टक्कर ले सकते हैं। संख्या बढ़ाने की क्या आवश्यकता है। विज्ञान का सामान्य ज्ञान बच्चों को दिया जाए।

विजय वर्मा : लोग सोचते हैं कि विज्ञान हमारे जीवन में अधिक से अधिक आए। हम विज्ञान से परिचित हो जाएँ। पर अब स्थिति बदल रही है। हमारे देश में नियन्त्रित आर्थिक व्यवस्था नहीं है। दिल्ली में विश्वविद्यालय में साइंस की सीटें खाली रहती हैं।

मनमोहन कपूर : विज्ञान पढ़कर भी आजकल नौकरी नहीं मिलती। विचार आता है कि विज्ञान पढ़ने के बाद भी क्लर्क ही बनना है तो आर्ट क्यों न पढ़ें।

एक शिक्षक : पर अभिभावक तो यही चाहते हैं कि हमारा बच्चा विज्ञान पढ़े।

प्रश्न : विज्ञान पढ़ने के लिए सबको बाध्य किया, तो क्या सरकार सब स्कूलों में साधन देती है? जहाँ एक भी साइंस का विद्यार्थी नहीं है वहाँ साइंस के तीन व्याख्याता हैं।

अनिल दीक्षित : शिक्षकों का स्तर सुधारना जरूरी है। क्या हम शिक्षकों में यह भावना नहीं ला सकते कि वे स्थानीय साधनों का इस्तेमाल करें? जिससे बच्चों को यह बता सकें कि विज्ञान क्या है। पाठ्यक्रम की परवाह हमें नहीं करनी चाहिए।

प्रश्न : विज्ञान कैसे पढ़ाया जाए, हम लोग यह सोच रहे हैं। उसकी पद्धति वैज्ञानिक तरीके से है। प्रश्न यह है कि इतनी बातों के बावजूद हम किस तथ्य पर पहुँचे? वैज्ञानिक रीति से किस तरह पढ़ाया जाए यह हम सीखना चाहते हैं। यह भी विचार करें कि क्या वैज्ञानिक विधि हमेशा सफल रहेगी? क्या वैज्ञानिक विधि जो है वह ही सफल विधि है? क्या एक ही विधि सफल विधि है? प्रश्न विधि का है; विधान का नहीं। यह वह ही निश्चित करेगा जो हमेशा पढ़ा हो। हम लोग जिस तथ्य के लिए इकट्ठे हुए हैं उसमें क्या निष्कर्ष निकाल रहे हैं?

सुदर्शन कपूर : प्रश्न विधि का नहीं है। विज्ञान का नहीं है। प्रश्न शिक्षा का है। विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में हम लोग शिक्षा को लेकर पड़े हैं। हम चाहते हैं कि बच्चा प्रश्न करना सीख जाए। अगर वह यह सीख गया तो सोचना भी सीख सकता है।

श्रीवास्तव : शिक्षा पद्धति में ऐसा परिवर्तन करना है कि बच्चा खुद सोचने लगे और खुद करने लगे। हमें बच्चों का दृष्टिकोण बदलना है। विज्ञान के द्वारा बदलें, चाहे जैसे बदलें।

अनिल सद्गोपाल : इस कार्यक्रम को शुरू करने के पीछे जो पीड़ा है वह यह है कि जो हमें पढ़ाया गया है वही अगली पीढ़ी को न पढ़ाया जाए।

हमें एकाध शिक्षक जरूर मिले जिन्होंने प्रोत्साहित किया। वरना शिक्षकों की रूचि सिर्फ पाठ्यक्रम पूरा करने की थी। हमने रटना सीखा, जानकारी हासिल की। पर बाद में सब जानकारी भूल गए। जो रटकर याद किया था वह भी सब भूल गए। हमने समझा कुछ नहीं। अगर बच्चा प्रश्न पूछना शुरू कर दे तो शायद वह अधिक सीखेगा। बच्चे सीखना, सोचना शुरू कर दें तो स्वयं उत्तर दे सकेंगे यह अच्छी चीज है।
हमारा मानना है कि जो भी प्रयोग सामग्री है उसका निर्माण स्कूली वातावरण में जूझते हुए ही हो सकता है। शिक्षक, विद्यार्थी स्कूली वातावरण में रहकर ही किताबें तैयार कर सकते हैं। एन.सी.ई.आर.टी. के नब्बे प्रतिशत प्रयोग स्कूलों में कर ही नहीं सकते। जिस क्षेत्र में आप परिवर्तन करना चाहते हैं उस क्षेत्र में उसके अनुकूल काम करना होगा।

म. प्र. शासन ने हमें काफी छूट दी है। अन्य प्रांतों में इतनी छूट नहीं है।

प्रश्न : विज्ञान शिक्षण की इस प्रणाली से शिक्षक निष्क्रिय नहीं होता ?

एक टापिक को पढ़ाने के लिए बच्चों को सामान दे देते हैं। इसमें शिक्षक का क्या रोल रहता है ?

प्रकाशराम श्रोती : इस प्रणाली में शिक्षक को काफी सक्रिय रहना पड़ता है। प्रयोग के समय काफी प्रश्न उठते हैं, जिससे शिक्षक निष्क्रिय रह ही नहीं सकता। बच्चे गलती सुधार नहीं पाते तो शिक्षक ही उसे सुधारता है।

मनमोहन कपूर : कुछ न करने वाले इस विधि में भी अनेक हैं। बच्चा गलती कर रहा है तो यह देखना शिक्षक का काम है। यदि शिक्षक इस पर ध्यान नहीं देता है तो हम कुछ नहीं कर सकते।

अनिल सद्गोपाल : सलाह देने का बहुत प्रयोजन है। नियन्त्रण का इस योजना में कोई प्रयोजन नहीं है।

प्रश्न : इस योजना में जो अच्छे शिक्षक हैं, क्यों न उन्हें पुरस्कार दिया जाए ? उससे शिक्षकों का उत्साह बढ़ेगा।

अनिल सद्गोपाल : यह कार्यक्रम कोई मॉडल प्रस्तुत करने के लिए शुरू नहीं किया गया है। इस कार्यक्रम को हम मौजूदा हाल में चलाना चाहते हैं। यह योजना अन्ततः सरकार को चलाना है। हम तो सिर्फ रास्ता दिखा रहे हैं। हम चाहें तो आदर्श स्थिति प्रस्तुत कर सकते हैं। इस कार्यक्रम में मूल्यांकन भी अलग तरह से होता है। बच्चों के कुछ विशेष गुणों के परीक्षण पर जोर होता है। विशेष महत्त्व होता है बच्चों की तर्कशक्ति का। बच्चों के सोचने का ढंग तार्किक है ? बच्चों की कल्पना शक्ति, रचनात्मक चिंतन कितना है ? क्या वे अपनी सूझ-बूझ के आधार पर कोई नया उत्तर देते हैं ? नया उत्तर देने वाले को ज्यादा नंबर दिए जाते हैं। 40 बच्चों ने एक ही ढंग का उत्तर दिया और दो बच्चों ने नए ढंग का उत्तर दिया। हम देखते हैं कि प्रायोगिक विधि को बच्चों ने कहाँ तक पकड़ा है। बच्चा खुद प्रयोग कर सकता है या नहीं ? उपकरणों के साथ प्रयोग करने का उसका डर दूर हुआ है या नहीं ?

इसमें बच्चों की मौखिक अभिव्यक्ति अधिक है, पर लिखित अभिव्यक्ति कमजोर है। बच्चे मन की बात को लिखित रूप में अभिव्यक्त कम कर पाते हैं। ऐसा हमारा अनुभव रहा है। बच्चा बोल सकता है, समझ सकता है पर उतने ही अच्छे ढंग से लिख नहीं पाता। बच्चे चित्रों से जल्दी समझते हैं। गुणात्मक प्रश्नों का उत्तर अच्छा देते हैं, पर मात्रात्मक प्रश्नों का उत्तर अच्छा नहीं दे पाते। अंकों का काम आ गया तो बच्चे को दिक्कत होती है। इसलिए मौखिक परीक्षा पर विशेष ध्यान देते हैं। मौखिक परीक्षा में बच्चे अच्छा काम करते हैं। लिखित परीक्षा में बच्चे दस प्रतिशत से ज्यादा नहीं बढ़ पाते। बच्चों को मौखिक परीक्षा में समय का बंधन नहीं है। बंधन होने पर बच्चे को दिक्कत आती है।

प्रश्न : अपने मूल्यांकन में बच्चा अनफेयर मिन्स (गलत तरीकों) का इस्तेमाल करने की कोशिश करता है ?

अनिल सद्गोपाल : इस समय वातावरण नकल का है। वातावरण परीक्षा पास करने का है। बच्चों में नकल की मनोवृत्ति है जरूर पर कम। इस कार्यक्रम में नकल करने की कोशिश में बच्चे सफल नहीं हो पाए हैं।

यहाँ उपस्थित हायर सेकण्डरी स्कूल के शिक्षकों से हम कुछ जानना चाहेंगे। आपके स्कूल में इस कार्यक्रम में पढ़े कितने बच्चे पहुँचे हैं ? इस कार्यक्रम से निकले और दूसरे बालकों में क्या अंतर है ? दशमलव में बच्चे कैसे हैं ? विज्ञान के कौन से अंशों में आपने उनको कमजोर पाया ? उनकी अभिव्यक्ति की क्या स्थिति है ?

विजय वर्मा : दो बच्चे एक सवाल को सही हल करते हैं। पर एक उत्तर देने में अधिक समय लगाता है, तो अच्छा कौन है ?

उत्तर : सही और जल्दी सोचे तो उस बच्चे को ज्यादा सुविधा मिलनी चाहिए। जो प्रश्न जल्दी हल करते हैं उसको पुरस्कार दें या न दें। पर जो देर में करते हैं उसके लिए क्या करते हैं ? क्या हम बच्चों में प्रश्न को देर से हल करने की प्रवृत्ति नहीं डाल रहे हैं ?

हमारा ख्याल है जो लड़का कम समय में प्रश्न हल करता है वह बहुत प्रश्न छोड़ देता है। जो ज्यादा समय लगाएगा वह ज्यादा प्रश्न हल करता है। यह सोचकर प्रश्न हल करने में समय लगाता है। प्रश्न पढ़कर समझकर उत्तर देता है।

प्रश्न : पाठ्यक्रम में कुछ विषयों के साथ पक्षपात किया गया है। ये विषय एन. सी. ई. आर. टी. में सातवीं से शुरू होते हैं।

अनिल सद्गोपाल : हम लोग छठी से शुरू करते हैं।

प्रश्न : इस कार्यक्रम का मुख्य अंग अनुवर्तन रहा है। हम लोग मासिक गोष्ठी में जाते हैं, स्कूलों में जाते हैं। क्या व्यापक स्तर पर करने के लिए हमें वही अनुवर्तन करना पड़ेगा।

उत्तर : अनुवर्तन तो जरूर करना पड़ेगा।

अनिल सद्गोपाल : क्या म. प्र. शासन सुविधा दे तो लोग काम करने को तैयार होंगे ?

एस. के. नाइक : जरूर तैयार होंगे।

श्रीवास्तव : सब जगह सुदर्शन कपूर और वर्मा नहीं मिलेंगे। इस तरह के लोग तैयार करने होंगे। छः सात दिन का अनुवर्तन कोर्स हमें लोगों को तैयार करने के लिए करना होगा। यहाँ जो सफलता मिली है वह लोगों के पूर्ण सहयोग से मिली है। इस कार्यक्रम को सफल करना है तो शिक्षक तैयार होंगे।

भरत पूरे : शिक्षक बच्चों के साथ रहे तो ही हम लोग मदद कर सकते हैं। हम सोलह की बजाए बत्तीस स्कूलों में करने का सोचते हैं। आप यूनिट तैयार क्यों नहीं कर देते।

ए. बी. खरे : वर्कर कहाँ मिलेंगे ?

अनिल सद्गोपाल : धार में इस कार्यक्रम को शुरू करना चाहें तो उसकी क्या संभावना है ?

भरत पूरे : वहाँ रहकर हम आपकी सहायता कर सकते हैं।

श्रीवास्तव : अब जमाना आ गया है कि जब महाविद्यालयों के शिक्षक प्रायमरी स्कूल में जाएँ। यह बहुत बड़ा कार्य है। इसकी सफलता में दो मत नहीं है। संदेह है कि इसका फालोअप प्रोग्राम क्या होगा। मैं चाहूँगा कि एक शोध केन्द्र हो।

★

होशंगाबाद विज्ञान : छात्रों की नजर में

प्रज्ञा और प्रियंका दो बहने हैं। कुछ महीने पहले जब उन्होंने यह पत्र लिखा था, तब प्रज्ञा आठवीं में और प्रियंका सातवीं में पढ़ती थीं। उससे पहले वे होशंगाबाद के शासकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक शाला में पढ़ती थीं। होशंगाबाद में उनके पिता नर्मदा महाविद्यालय में इतिहास पढ़ाते थे। प्रज्ञा और प्रियंका का परिवार होशंगाबाद से मण्डला चला गया जहाँ उनके पिता की पोस्टिंग कान्हा पार्क में हुई। सरकारी नौकरी करने वालों के परिवार को स्थानान्तरण के कारण एक जगह से दूसरी जगह जाना स्वाभाविक है। स्थानान्तरण की इस घटना में हमारी रुचि का विशेष कारण है। पत्र लिखने वाली ये दोनों बहनें होशंगाबाद में होशंगाबाद विज्ञान पद्धति से विज्ञान पढ़ रही थीं। मण्डला जाते ही वे एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा तैयार पुस्तकों से परम्परागत ढंग से विज्ञान पढ़ने लगीं।

उनकी पढ़ाई के ढंग में जो परिवर्तन आया, उस पर उनकी क्या प्रतिक्रिया है? वे होशंगाबाद विज्ञान के बारे में क्या सोचती हैं? एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा तैयार किताबों से जो विज्ञान वे पढ़ रही हैं, उसके सम्बन्ध में वे क्या सोचती हैं? दोनों बहनों के विचारों और अहसास की झलक हमें उनके लिखे पत्रों में मिलती है। अभी तक विशेषज्ञों और शिक्षकों से हम होशंगाबाद विज्ञान पर उनके विचार सुनते आए हैं। यहाँ हम वह दे रहे हैं, जो बच्चे सोचते हैं। यह विज्ञान अन्ततः विशेषज्ञों के लिए नहीं, वरन् बच्चों का विज्ञान है....

रटना नहीं पड़ता.....

होशंगाबाद विज्ञान में मुझे अत्यधिक रुचि लगी। कारण बहुत गूढ़ है। इस विज्ञान में एक बहुत बड़ी खूबी है कि रटना नहीं पड़ता और इसके बिलकुल विपरीत एन. सी. ई. आर. टी. द्वारा रचित पुस्तक में इतना रटना पड़ता है कि किसी विद्याहीन विद्यार्थी के समझ में ही न आए। जब मैंने होशंगाबाद विज्ञान की किताब का शुरू से अन्त तक अवलोकन किया तो उसके अन्तिम पृष्ठ में लिखा था–"मैंने सुना-भूल गया। मैंने देखा याद रहा। मैंने करके देखा–समझ गया। सचमुच ये पंक्तियाँ पूरे विज्ञान की गाथा चरितार्थ कर रहीं थीं।

होशंगाबाद विज्ञान मिडिल स्कूल में चलता है। हमारे होशंगाबाद स्कूल में सातवीं की टीचर उस विज्ञान को अच्छी तरह समझती नहीं थी। और विद्यार्थियों को भी नहीं समझाती थी। जिसका एक बहुत बुरा परिणाम यह हुआ कि सातवीं की छात्राओं को यह विज्ञान बुरा लगने लगा। इसके विपरीत छटवीं की मैडम इस विज्ञान को अच्छी तरह समझती थी और छात्राओं को भी समझाती थी। इसका एक बहुत अच्छा परिणाम यह हुआ कि छात्राओं को होशंगाबाद विज्ञान अच्छा लगने लगा।

एन. सी. ई. आर. टी. की पुस्तक जिसका अध्ययन हम मंडला में कर रहे हैं, पढ़ाने वाली शिक्षिका तो बहुत अच्छा पढ़ाती हैं। पर यह विज्ञान किसी को समझ नहीं आता। परीक्षा के प्रश्न उत्तर होशंगाबाद विज्ञान के कठिन आते थे। पर उन प्रश्नों का हल मूर्ख से मूर्ख छात्र भी निकाल सकता है। क्योंकि उसने प्रयोग करके अपने दिमाग में सभी कुछ बिठा लिया है।

एन. सी. ई. आर. टी. की पुस्तक के प्रश्न उत्तर को विद्यायुक्त छात्र हल नहीं निकाल सकता, क्योंकि साल भर उसके समझ में विज्ञान नहीं आता है।

होशंगाबाद विज्ञान वाकई बहुत अच्छा है। एन. सी. ई. आर. टी. की पुस्तक में रटना बहुत पड़ता है। पर इसे पढ़ाने वाली शिक्षिकाएँ बहुत अच्छी हैं।

अगर होशंगाबाद विज्ञान को पढ़ाने वाली शिक्षिकाएँ अच्छी होतीं तो मुझे इस विज्ञान को छोड़ना बिल्कुल न अखरता।

प्रियंका मिश्रा
कक्षा सातवीं
निर्मला, शाला मंडला

मैं कभी नहीं भूल सकूंगी

हमने होशंगाबाद में रहकर होशंगाबाद विज्ञान पढ़ा। पर यहाँ आकर परम्परागत तरीके से विज्ञान पढ़ी। हमने जब होशंगाबाद विज्ञान

पढ़ना शुरू किया था तब वह बहुत बोर लगी थी। लगता था कब इस विज्ञान से निपटेंगे। परन्तु जब मैं मंडला आई तो यहाँ एन. सी. ई. आर. टी. (NCERT) द्वारा रचित विज्ञान जो मध्य प्रदेश में प्रचलित है, वह पढ़ी। यह मुझे बहुत कठिन लगी। एन. सी. ई. आर. टी. विज्ञान को रटना पड़ता है। बिना रटे अपन परीक्षा नहीं दे सकते। इसके विपरीत होशंगाबाद विज्ञान को रट नहीं सकते थे। उसे रटने में समझ में नहीं आता था।

इस विज्ञान को पढ़कर हमने नये-नये प्रयोग सीखे। कुछ प्रयोग ऐसे भी थे जो हमने होशंगाबाद में सातवीं में सीखे थे और वे प्रयोग यहाँ हम आठवीं में पढ़ रहे हैं। जब वे सभी प्रयोग हमें परीक्षा में आ जाते हैं तो हमें अत्यधिक खुशी होती है और लगता है कि होशंगाबाद विज्ञान को पढ़कर ही हम यह कर सकते हैं।

होशंगाबाद विज्ञान की किताब मोटी तो थी पर बहुत रुचिकर थी। और एन. सी. ई. आर.टी. की पुस्तक में दो पुस्तक होती है। एक भौतिक और रसायन की और दूसरी जीव विज्ञान की। इन्हें पढ़ना एक बोझ-सा लगता है। पढ़ते-पढ़ते दिमाग थक जाता है। समझ में नहीं आता है कि क्या पढ़ें क्या न पढ़ें।

एन. सी. ई. आर. टी. विज्ञान के एक-एक प्रश्न का उत्तर और प्रयोग रटना पड़ता है। सूत्र रटना पड़ता है। पर होशंगाबाद विज्ञान में प्रयोग दिए रहते हैं। फिर उसी से सम्बन्धित प्रश्न रहते हैं। पहले प्रयोग करना पड़ता है। फिर निष्कर्ष निकालना पड़ता है। और फिर उससे सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर देना पड़ता है।

अभी ही मैंने अर्द्धवार्षिक परीक्षा दी। मुझे हर विषय में 40 से ऊपर मिले हैं। पर एन. सी. ई. आर. टी. विज्ञान में मुझे मालूम था कि कम नम्बर मिलेंगे और मुझे मिले भी। परीक्षा के प्रश्न भी होशंगाबाद विज्ञान की अपेक्षाकृत अलग ढंग से आए। होशंगाबाद विज्ञान की परीक्षा के प्रश्नों में हमें सामग्री दी जाती थी। फिर हम प्रयोग करते थे और प्रश्नों के अनुसार अपने उत्तर परीक्षा कापी में लिखते थे। फिर तो हमें विश्वास हो ही जाता था कि 50 में से 45-46 नम्बर तो मिलेंगे ही। किन्तु एन. सी. ई. आर. टी. की विज्ञान में प्रश्नों का भंडार ही भंडार रहता है। जो प्रश्न परीक्षा में आते हैं वो यदि अपन ने रटे हैं तो ठीक है। नहीं तो वे प्रश्न कितनी भी कोशिश करेंगे, कतई नहीं बनेंगे।

मुझे यह विज्ञान जो टीचर पढ़ाती हैं वे बहुत अच्छे से पढ़ाती हैं। किन्तु यह विज्ञान मुझे अच्छी ही नहीं लगती है। चाहे कोई भी अच्छे से अच्छा टीचर मुझे पढ़ाने के लिए मिल जाए। मैं होशंगाबाद विज्ञान का पक्ष नहीं ले रही हूँ। मुझे तो सिर्फ अच्छी लगती है, तो होशंगाबाद विज्ञान। जिसे मैं कभी नहीं भूल सकूँगी।

प्रज्ञा मिश्रा
कक्षा आठवीं
निर्मला शाला मंडला

❖

लघु प्रश्न

प्रश्न 1 : मानलो आपके पास चार सेल और चार बल्ब हैं। इनमें से एक बल्ब फ्यूज़ है और एक सेल खराब है। आपके पास उपकरण के तौर पर कुछ तार के टुकड़े, सेल होल्डर और बल्ब होल्डर भी हैं। इन बल्बों पर हल्का नीला रंग किया हुआ है और उनकी फ़िलामेंट नहीं दिखतीं। गलती से आपने सब सेल और बल्बों को एक साथ रख दिया है। ऐसी कोई विधि सुझाइए जिससे कम से कम प्रयोग और उनके अवलोकनों के आधार पर फ्यूज़ बल्ब और खराब सेल को अलग किया जा सके।

* * *

प्रश्न 2 : किसी एक आदमी के शरीर का आयतन और उसकी सतह का क्षेत्रफल मालूम करने के लिए कम से कम एक एक प्रयोग सुझाइये।

* * *

प्रश्न 3 : ग्राफ पेपर की सहायता से अपनी हथेली का क्षेत्रफल वर्ग से. मी. में पता लगाइए और उसको वर्ग मी. में लिखिए।

* * *

प्रश्न 4 : यदि आपको समान शक्ल और साइज़ की लोहे की दो छड़ें दी जाएँ और यह बता दिया जाता है कि इन में से एक चुम्बक है और और दूसरी नहीं तो आप इनको अलल-अलग कैसे पहचानोगे।

इन दो छड़ों में से चुम्बक पहचानने का एक तरीका हम आपको बता दे रहे हैं। इनमें से एक छड़ को जमीन पर रख दें और दूसरी छड़ को एक सिरे से बारी-बारी से जमीन पर रखी छड़ के दोनों सिरों और मध्य के हिस्से से छुआएँ। ऐसे करने पर यदि हर जगह बराबर आकर्षण हो तो आपके हाथ वाली छड़ चुम्बक है। अगर जमीन पर रखी छड़ के बीच में उसके सिरों की अपेक्षा कम आकर्षण हो तो यह चुम्बक है।

अब आप इनको अलग-अलग पहचानने का एक और तरीका स्वयम् सोचकर बताएँ। याद रहे कि इन छड़ों के अलावा आप के पास और कुछ नहीं है।

प्रश्न 5 : एक गाँव में लोग अपनी दो बाहों से गिना करते हैं, ऊँगलियों से नहीं। एक चीज़ गिननी हो तो एक बाँह सिर के ऊपर करते हैं, और दूसरी चीज के लिए दूसरी बाँह ऊपर करते हैं। तीसरी चीज गिनने से पहले दोनों बाहों को नीचे करते हैं और एक पत्थर को दो के बराबर मान कर रखते हैं। इसी तरह गिनती आगे बढ़ती है।

नीचे दो गणक दिए गए हैं। गणक 1 में 39 की संख्या इस तरह दर्शाई गई है। गणक 2 में वही संख्या (39) उस गाँववासियों के गणक पर उनकी विधि द्वारा दिखाओ।

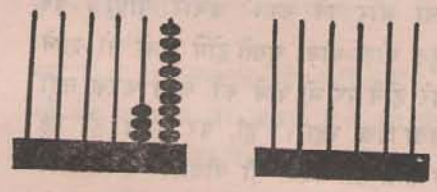

प्रश्न 6 : एक किसान ने पहली बार अपने बगीचे में पाँच पपीते के पौधे लगाये। जब पौधे बड़े हो गये तो उसने देखा चार पौधों में छोटे फल लगे हैं। एक पौधे में फूल तो लगते हैं पर फल नहीं लगते। उसने उस पौधे को काट कर फेंक दिया।

लगभग एक सप्ताह बाद उसने देखा चारों पौधों में पपीते के फल उतने ही लगे हैं जितने पहले थे और हर पौधे के नीचे कुछ पपीते के फूल टूटे, मुरझाए पड़े हैं। उसने पड़ौसी किसान को पूरी बात सुनाई। पड़ोसी ने कहा तुमने जिस पौधे को काटकर फेंक दिया उसे नहीं काटना था। यह उसी के कारण हो रहा है।

1. बताओ किसान ने पपीते के किस जाति का पौधा काटा था ?
2. पौधे काटने से दूसरे पौधों में फल लगना क्यों बन्द हो गया था ?

प्रश्न 7 : निम्न तालिका को 'हाँ' या नहीं लिखकर पूरा करो :

		गुण धर्म			
	नाम	प्रजनन करते हैं	वृद्धि होती है	स्वयं चल फिर सकते हैं	श्वसन करते हैं
1.	सुखी पत्ती				
2.	बन्दर				
3.	बीज				
4.	साइकिल				
5.	नीम का पेड़				
6.	पानी				

1. अब तुम्हारे उत्तर के आधार पर बताओ कि तालिका में निर्जीव कौन है और क्यों ?
2. तालिका में मृत कौन है और क्यों ?

जवाब दीजिये

मैं खेलूँ कहाँ ?

मैं कूदूँ कहाँ ?

मैं गाऊँ कहाँ ?

मैं किसके साथ बात करू ?

बोलता हूँ, तो माँ को बुरा लगता है।

खेलता हूँ, तो पिताजी खींचते हैं।

कूदता हूँ, तो बैठ जाने को कहते हैं।

गाता हूँ, तो चुप रहने को कहते हैं।

अब आप ही कहिए कि मैं कहाँ जाऊँ ?
क्या करूँ ?

× × ×

चैन कैसे पड़े ?

अब तक बच्चे घरों में मार खाते हैं,
और विद्यालयों में गालियाँ खाते हैं,
तब तक मुझे चैने कैसे पड़े ?

जब तक बच्चो के लिए पाठशालाएँ,
वाचनालय,
बाग-बगीचे और क्रीडांगण न बनें,
तब तक मुझे चैन कैसे पड़े ?

जब तक बच्चों को प्रेम और सम्मान नहीं
मिलता,
तब तक मुझे चैन कैसे पड़े ?

गिजुभाई

माहू के अण्डे

(मैंने करीब दो-ढाई साल तक कुछ ऐसे गरीब बच्चों के साथ शिक्षा का काम किया जो या तो कभी स्कूल गये ही नहीं थे या दूसरी, तीसरी (और एक छठवीं) तक जाकर छोड़ दिया था। ये बच्चे ढोर चराते व दिन भर पपीरा और बाँसुरी बजाते हुए घूमते रहते थे। मैंने इनके साथ-साथ घूम-घूम कर बहुत जीव-विज्ञान सीखा। सारे खेत और जंगल हमारी प्रयोगशाला थे। उसी समय की कुछ रोचक घटनाएँ यहाँ प्रस्तुत हैं।)

हमारा 'कीड़ों की दुनिया' का काम खेतों में घूम-घूम कर होता था। फायदा यह था कि मेरे साथ कीड़ों को खोजने वाले बच्चे या तो स्कूल छोड़ चुके थे या स्कूल कभी गये ही नहीं थे। उनके पेड़-पौधों और कीड़े-मकोड़ों के अवलोकन बहुत गहरे थे। धान का खेत, तूवर का खेत और चारे में से न जाने कितने प्रकार के रंग-बिरंगें अंडे और इल्लियाँ हम लोग रोज ढूँढ लाते थे। पत्तियाँ कुतरती हुई, रस चूसती हुई ढेरों इल्लियों के चित्र हमारे पास इकट्ठे हो गये थे। अंडों का आखिर होता क्या है, इनमें से क्या निकलता है, इसकी खोज हम लोगों ने शुरू की। हमारी प्रयोगशाला (!) यानि एक छोटा-सा कमरा, पत्तियों पर रखे हुए छोटे-छोटे अंडों का अड्डा-सा बन गया था। कुछ पत्तियां प्लास्टिक के डिब्बों में रखी थीं और कुछ गत्ते के डिब्बों में। 'कुछ तो बदला होगा शायद।' 'पता नहीं अंडों को बड़ा हो जाना चाहिए आखिर इतने छोटे-छोटे (साबुदाने के बराबर) अंडों में कैसे कुछ निकलेगा ?' 'इनका रंग बदलेगा क्या ?' ऐसी बातें होती रहती। सुबह एक बार देखकर सब अपने-अपने काम में लग जाते। हाँ, बीच में समय-समय पर झाँककर अवश्य देख लेते कोई-कोई। कोई कभी-कभी निराश होकर यह भी कह देते, 'अरे बामे कच्छू नहीं होय, सब पिरयोग-मिरयोग फैल हो गए।' जब 4-5 दिन तक कुछ नहीं हुआ तो विचार आया कि क्यों नहीं कुछ अंडे धान की गड़ैया में ढूँढ़कर, वहीं निशान लगाकर, पौधे पर ही अवलोकन करें। एक दो ऐसे पौधे चुन लिये जिन पर एक-दो पत्तियों पर सुन्दर हल्के हरे रंग के अंडे दिखे। अब रोज सुबह भागकर हम सब धान की गड़ैया में पहुँच जाते। पर यह ज्यादा दिनों तक नहीं करना पड़ा क्योंकि तीसरे दिन अंडे देखते ही खुशी से चीख-सी निकल गयी, 'अरे अंडे खाली हो गये।' मैंने देखा सचमुच उन छोटे-छोटे अंडों के ऊपर कुछ-कुछ टोपी की तरह के ढक्कन खुले हुए थे और अन्दर से वे खाली थे। इनमें से आखिर निकला क्या, इस की खोज शुरू हुई। उस पत्ती पर तो कुछ भी दिखाई नही दिया। अब ? आसपास की पत्तियों पर खोज हुई। जो इल्लियाँ या फुन्दियाँ दिखतीं लगती कि, 'ये तो बहुत बड़ी हैं, इतने छोटे-छोटे अंडों से कैसे निकलेंगी' और कभी लगता कि, 'ये तो बहुत दूर की पत्तियों पर हैं, नये-नये बच्चे एकदम अंडों में से निकलकर इतनी दूर कैसे जा सकते हैं। साफ था हम फिर चूक गये। अपने सामने अंडे खुलते हुए देखते तो कोई बात थी। 'अब इतने बड़े धान के खेत में कहाँ ढूँढें इन छोटे-छोटे अंडों से निकले नन्हें-नन्हें बच्चे ?' 'गड़ैया के पानी में गिर गये होंगे तब तक मर ही चुके होंगे।' यानि अब कुछ और करना पड़ेगा।

एक दिन अचानक एक बच्चा सिरपों का पुआर (दलहन जाति का एक चारा) का छोटा-सा पौधा उखाड़ लाया। उस पौधे के नन्हें से तने पर ढेरों छोटे-छोटे काले कीड़े थे। इतने कि तना ही काला दिख रहा था। ये कीड़े आखिर तने व छोटी-छोटी पत्तियों पर चिपक कर क्या कर रहे हैं ? पहले ऐसे ही खाली आँखों से और फिर लेन्स से देखने का प्रयास हुआ। मालूम हुआ की, 'रस चूस रेहे हैं साले पत्तियों, फूलों और तने का।' 'बेचार पौधा। पर बहुत थोड़ा-थोड़ा चूसते होंगे तभी तो इतने सारे होने पर भी पौधे को खास फरक नहीं पड़ता दिख रहा।' 'हाँ, पर चूसते ही रहे तो कभी तो मरेगा ही पौधा। आदि-आदि न जाने कितनी बातें होती रही। फिर तो कमरे में सिरपोकों के छोटे-छोटे पौधों का अम्बार लग गया। किसी ने नाम भी बता दिया कीड़ों का—माहू। मैंने थोड़ा और उत्साहित किया कि काँच की पट्टी पर रखकर लेन्स और सूक्ष्मदर्शी से देखो तो और भी जोश आ गया। जल्दी ही सवाल उठ गया कि इसमें नर कौन है और मादा कौन ? कुछ गुपचुप हँसी भी सुनाई देने लगी। पता चला कि कुछ कीड़े आम कीड़ों से ज्यादा मोटे हैं यानि उनका धड़ व उदर वाला हिस्सा काफी फूला हुआ है। हँसी इस बात की थी कि इन बच्चों ने अन्दाज लगाया कि ये ही मादा माहू होगी और अंडे देने वाली होगी तब तो पेट फूला है। पर यह पक्का कैसे हो ? इनका अवलोकन करें ध्यान से। यही हुआ। और पौधे लाये गये। वैसे पत्तियों पर अंडे ढूँढ़ने का प्रयास हुआ। अंडे नहीं मिले। माहुओं को ध्यान से देखते रहने के कारण

उसके इतने सारे अंग दिखने लगे। किसी को पूंछ दिखती, तो किसी को आँखें। किसी को छह टाँगें साफ-साफ दिखती तो किसी को सूँड के पास कुछ रचना। कोई माहू को छेड़ता है तो दिखता कि कैसे वह अपनी सूँड उठाकर, नीचे कहीं छुपाकर पत्ती पर चल देती है व थोड़ी दूर जाकर सूँड निकालकर फिर से रस चूसने लगती है। कभी-कभी ज्यादा तंग करने पर थोड़ी देर अनमनी-सी यूँ ही खड़ी रहती है और फिर दूर जाकर धीरे-धीरे सूँड निकालकर रस चूसने लगती है, जैसे दुनिया में कुछ काम ही नहीं है, सिवाय रस चूसने के। पर फिर अंडों का क्या हुआ? आखिर ये नन्हीं-नन्हीं माहू पैदा कहाँ से हो रही हैं। आँख गड़ाए थक गये।

तभी कोई जोर से बोला, "अरे माहू तो बच्चे देती है। अभी-अभी इस माहू के पीछे से पूरी छोटी माहू निकली।" भगदड़-सी मच गयी। माहू और बच्चे??? पर फिर सबने आँख गड़ा-गड़ा कर देखा। माहू के पीछे-से छोटी-सी, नन्हीं-सी माहू निकलते हुए। पर इस जोश में यह देखना भूल ही गये कि बच्चे कौन-सी माहू ने दिये, मोटी वाली ने या साधारण वाली ने!!! अब यह तुम ढूँढ़ो। (माहू मेथी, गोभी, राई व कई और सब्जियों में भी मिलती है पर वहाँ हरी व पीली-सी होती है।

क्या मादा माहू सचमुच अंडे नहीं देती? नर और मादा माहू को कैसे पहचाना जा सकता है? इन प्रश्नों के उत्तर खोजिये तथा हम तक पहुँचाइये।

साधना सक्सेना
पलिया पिपरिया

लाल बुझक्कड़ कहते हैं .....

अपने ही लोगों को खोजो
उन्हें प्यार करो,
उनका विश्वास अर्जित करो,
उनके साथ काम करो,
जो कुछ उनके पास है, उसी को आधार बनाओ,
वे जो जानते हैं उसी को आगे बढ़ाओ।
क्योंकि अच्छे जन नेता वे ही होते हैं जिनकी कार्य समाप्ति पर लोग कह उठें "यह काम सबने मिलकर किया है।"

× × ×

"शिक्षण पद्धति ऐसी हो जो लोगों के सीखने की स्वाभाविक विधि से मेल खाती हो–ऐसी विधि जिसे वे अपनाकर आनन्दित होते हों।"

समझ में नहीं आता

शिक्षक : संतुलित भोजन के लिए हमें फल, दूध, घी, अंडे आदि खाना चाहिए।

लड़का : क्यों री–आज तू क्या खाकर आई है?

लड़की : रोटी और प्याज।

लड़का : लगता है किताब में लिखा भोजन परीक्षा में लिखने के लिए है और घर का खाना खाने के लिए।

लड़की : हमारे समझ मे नहीं आता कि किताब में ऐसा लिखते क्यों हैं।

विज्ञान : जनता के हित में....

केरल में एक संगठन है जिसे लोग 'केरल शास्त्र साहित्य परिषद्' कहते हैं। यह संगठन लोक विज्ञान (या जन विज्ञान) की बातें करता रहता है। सवाल उठता है: क्या आज की टेक्नॉलोजी की सुविधायुक्त सभी साज सामान विज्ञान नहीं है? फिर यह क्या है? किसका विज्ञान है? और लोक विज्ञान क्या चीज है?

ये सवाल सीधे विकास की प्रक्रियाओं से जुड़ जाते हैं--सामाजिक एवं आर्थिक विकास। एक सामान्य तस्वीर उभरती है जिसमें दिखता है कि आज का विज्ञान एक ऐसी टेक्नॉलोजी को बल देता है जो कुछ लोगों को सुविधाएँ पहुँचाता है और बहुत-से लोगों को गुलाम बनाता है। ऐसा क्यों होता है? यह एक ही बुनियादी सवाल है।

लोक विज्ञान वह विज्ञान है जो जन समुदाय की आकांक्षाओं को स्वर देता है और लोक विज्ञान की माँग तब उठेगी जब मूक जन समुदाय आज के विज्ञान आधारित विकास पर सवाल उठाएँगे और उनमें सवाल उठाने की क्षमता विकसित होगी। यह क्षमता विकसित करने में जानकारी और उस जानकारी का विश्लेषण करने का तरीका महत्त्वपूर्ण है।

यह जल-विद्युत योजना क्यों? किसके लिए? किसके हित में? किस कीमत पर? इसका पर्यावरण और समाज पर क्या असर होगा? कोई दूसरा रास्ता नहीं है क्या?

रेयॉन फैक्टरी क्यों जो उस नदी को प्रदूषित करती है जिस पर हजारों लोग निर्भर रहते हैं? यह रेयॉन किसके लिए?

ऐसे कई सवाल हैं हमारी उस दुनिया के बारे में जिसमें हम सब रहते हैं और जिसकी सम्पदा पर हम सभी आश्रित हैं।

केरल शास्त्र साहित्य परिषद् इस वैज्ञानिक मानिकसिकता का बच्चों, प्रौढ़ों और समूचे जन समुदाय में फैलाने का काम करती है। इसके लिए कई तरीके अपनाए हैं: पत्रिकाएँ प्रकाशित करती है, विज्ञान यात्राएँ करती है, जन शिक्षण का कार्य कई तरह से करती है, बच्चों के लिए प्रतियोगिताएँ चलाती है, विकास के मुद्दों पर जनमत को संगठित करती है....

1982-83 में केरल शास्त्र साहित्य परिषद् के सक्रिय कार्यकर्त्ता डॉ. ए.पी. परमेश्वरन पिपरिया आए थे। उन्होंने एक गोष्ठी में केरल शास्त्र साहित्य परिषद् की गतिविधियों की जानकारी दी थी। हम उस जानकारी को यहाँ शृंखलाबद्ध कर रहे हैं।

बीस साल पहले (1962 में) केरल के 30-40 वैज्ञानिकों की आपसी समझ बनी कि विज्ञान को मलयालम भाषा के माध्यम से आम लोगों के बीच लोकप्रिय बनाना चाहिए। अंग्रेजी भाषा, विज्ञान के प्रसार में बाधा डालती है, चूँकि यह अधिकतर लोगों की भाषा नहीं है। इस समझ से संस्था बनी--केरल शास्त्र साहित्य परिषद् (मलयालम में विज्ञान को शास्त्र ही कहते हैं)। आज बीस वर्षों के विकास के बाद स्थिति यह है कि यह संस्था केवल केरल की मातृभाषा और साहित्य से ही जुड़ी हुई नहीं है बल्कि समाज के अनेक पहलुओं से सम्बन्धित है। इसके सदस्य स्वास्थ्य, पर्यावरण, ऊर्जा उत्पादन, सिंचाई, यातायात आदि क्षेत्रों में जानकार व योग्य व्यक्ति हैं और इन सभी क्षेत्रों में उठ रहे सवालों व समस्याओं को वैज्ञानिक व लोक-हित के नजरिए से उभार कर, उनका आम जनता में प्रचार करते हैं, लोगों को शिक्षित करते हैं।

यह संस्था आज अपने नाम के सीमित दायरे से कहीं ज्यादा विकसित हो गई है, और आश्चर्य की बात तो यह है कि इसके 7000 सदस्य, जिनमें से 300 सक्रिय कार्यकर्त्ता हैं, बिलकुल स्वैच्छिक रूप से परिषद् का काम करते हैं। परिषद् के पास कुछ क्लर्क, ड्राइवर आदि छोड़ कर वेतन पाने वाले कार्यकर्त्ता नहीं हैं। परिषद् के काम के महत्व की लोकप्रियता व लोगों की अपनी सजगता और सामाजिक जागरूकता का ही यह उदाहरण है।

हाल यह है कि विज्ञान की कोई भी आधुनिकतम किताब, जब परिषद् के पास आती है, तो दस दिन के अन्दर-अन्दर उसका तुरन्त मलयालम में अनुवाद हो जाता है। नौकरी पेशा लोग अपना दिन का काम समाप्त कर कुछ घंटे परिषद् के काम को देते हैं--किताब कुछ खण्डों में बटी, कुछ लोगों ने अलग-अलग उनका अनुवाद किया, कुछ और कार्यकर्त्ताओं ने अनुवादित अंशों को टाइप किया, कुछ ने प्रूफ पढ़े, कुछ ने छपाई का काम करवाया और मलयालम में किताब तैयार। परिषद् के विभिन्न कामों के लिए फन्ड (राशि) भी किसी निश्चित स्रोत से नहीं आती--जहाँ से भी उन्हें सहायता मिले वे ले लेते हैं। पत्रिकाओं को बेचने से कुछ राशि प्राप्त होती है। हाँ, एक बार सरकार ने उन्हें तीन वाहन खरीदने को पैसा दिया था--पर पेट्रोल, चालक का वेतन इत्यादि परिषद्

देती है। ये वाहन परिषद् की फिल्म, साहित्य आदि को केरल के विभिन्न भागों में पहुँचाने और विज्ञान यात्राओं पर निकली परिषद् की टीम के यातायात हेतु काम में आते हैं।

हर वर्ष परिषद् की ओर से 6–8 लाख रुपये मूल्य की पुस्तकें व पत्रिकाएँ छपती हैं और इस साहित्य को आम पुस्तकों की दुकानों के माध्यम से नहीं बेचा जाता। परिषद् के कार्यकर्त्ता खुद यह साहित्य बेचते हैं–4000 शिक्षक, बस कन्डक्टर, डाकिए, बिजली का लाइनमेन–सभी इनके कार्यकर्त्ताओं में शामिल हैं। विज्ञान यात्रा पर निकलने के पहले निश्चित संख्या में कुछ साहित्य हर केन्द्र पर भेज दिया जाता है–और वह केन्द्र यह साहित्य घर-घर बेचकर राशि जमा करता है। इसमें से कुछ प्रतिशत विज्ञान यात्रा से सम्बन्धित आयोजन के खर्चे के लिए काट लेता है और बाकी राशि टीम के मैनेजर को सौंप देता है।

परिषद् की ओर से चार पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं :

(1) मिडिल स्कूल बच्चों के लिए–'यूरेका' (25,000 प्रतियों की प्रतिवर्ष बिक्री)

(2) उच्चतर माध्यमिक स्कूल के बच्चों के लिए (15,000 प्रतियों की प्रतिवर्ष बिक्री)

(3) कॉलेज के छात्रों के लिए–'शास्त्रगति' (2000 प्रतियों की प्रतिवर्ष बिक्री)

(4) ग्रामीण किसानों के लिए (2000 प्रतियों की प्रतिवर्ष बिक्री)

परिषद् के कामों को सात श्रेणियों में बाँटा जा सकता है :

1. स्कूलों में औपचारिक शिक्षा—इस संदर्भ में परिषद् की कोशिश रही है कि शिक्षकों के प्रशिक्षण के बदलाव द्वारा पढ़ाई के काम को दिलचस्प और आनन्ददायक बनाया जा सके। परिषद् के सक्रिय कार्यकर्त्ता डा. परमेश्वरन की भावना है कि अगर शिक्षक शिक्षण कार्य को बोझ समझेंगे तो उनका नज़रिया सौदेबाजी का ही रहेगा–जितना कम श्रम बेचना पड़े व जितना अधिक लाभ उठाया जा सके, उतना अच्छा। काम के प्रति इस अलगाव व उदासीनता की भावना के रहते शिक्षण के काम में किसी भी प्रकार का नवीनीकरण मुश्किल हो जाता है। शिक्षकों का सक्रिय सहयोग उनकी अपनी समस्या उठाए बिना नहीं मिल सकता–और ये समस्याएँ केवल आर्थिक नहीं है। काम व आनन्द में, जो अंतर श्रम के बेचने से बन जाता है, इस अंतर को भी काम को आनन्ददायक बनाकर दूर करना चाहिए।

शिक्षकों के अलावा, इस संदर्भ में परिषद् स्कूल की पाठ्य-पुस्तकों में सुधार लाने का भी प्रयास करती है। बच्चों के लिए कई स्तरों पर प्रतियोगी परीक्षाएँ भी करवाई जाती हैं। शुरू में इन प्रतियोगिताओं को अनौपचारिक रूप से कुछ शिक्षकों की सहायता से कुछ स्कूलों में आरम्भ किया गया था। फिर एक समिति बनाई गई।

शिक्षा विभाग के एक उच्च अधिकारी ने इन प्रतियोगिताओं का बहुत विरोध किया–उसका कहना था कि इन प्रतियोगिताओं को करवा कर शिक्षक अपना समय बर्बाद कर रहे हैं और प्रतियोगिता के लिए के. एस. एस. पी. (के. शा. सा. प.) की जिन पुस्तकों का पढ़ना आवश्यक बनाया गया है, उन पुस्तकों के माध्यम से धर्म की नींव पर चोट की जा रही है। सरकार ने तब इस सम्पूर्ण कार्यक्रम को रोककर ठीक ऐसा ही एक कार्यक्रम अपने अधीन करवाने का निर्णय लिया। उनका कार्यक्रम एक-दो साल चला। बच्चे, शिक्षक, सभी के.एस.एस.पी. के कार्यक्रम से इतना परिचित हो गए थे कि सरकार द्वारा चलाई गई किताबों को वे सरकारी शास्त्रगति कहते (शास्त्रगति के.एस.एस.पी की किताब है), और प्रतियोगिता को सरकारी यूरेका (प्रतियोगिता का नाम के. एस.एस.पी. ने यूरेका रखा था)। इन अधिकारी महोदय का जब तबादला हो गया तब सरकार और के.एस.एस.पी के बीच एक अनौपचारिक समझौता हो गया कि प्रतियोगिताओं को बाँट कर चलाया जाएगा।

इन प्रतियोगिताओं का एक मुख्य उद्देश्य कुछ ऐसा है––ज्यादातर जो भी सामान्य ज्ञान आदि की प्रतियोगिताएँ होती हैं, वे उच्च व मध्यम वर्गीय परिवारों के बच्चों के लिए ही होती हैं। उनमें प्रश्न ही इस ढंग के पूछे जाते हैं जो कि अच्छी व महँगी शिक्षा प्राप्त करने वाले तथा अच्छी-अच्छी पत्रिकाएँ व किताबें पढ़ने वाले, शिक्षित माहौल में पलने वाले बच्चे ही जान पाते हैं––जैसे न्यूट्रॉन का आविष्कार किसने किया ? इस वर्ष कला क्षेत्र में नोबल पुरस्कार किसको मिला...? परिषद् का उद्देश्य था कि प्रतियोगिताओं के माध्यम से ऐसे प्रश्न पूछे जाएँ जिनका सम्बन्ध केरल की आम जनता की जिन्दगी से, खासकर गाँव के लोगों की जिन्दगी से हो। इससे लोगों का अपनी परिस्थितियों के बारे में ज्ञान बढ़ेगा और गरीब व साधारण लोग भी उन सवालों के जवाब बना सकेंगे।

सवाल कुछ ऐसे होते हैं––केरल की सबसे लम्बी नदी कौन-सी है ? केरल व बाकी भारत की कृषि-पद्धति में सबसे बड़ा फर्क क्या है ? इस आखिरी सवाल का जवाब यह है कि जबकि बाकी भारत की अधिकांश फसलें मौसमी हैं, केरल की अधिकांश फसलें लम्बी अवधि की हैं (बहुवर्षीय) और इस फर्क का महत्व यह है कि केरल का किसान कृषि सम्बन्धी विज्ञान तकनॉलाजी के नवीनीकरण को आसानी से अपना नहीं पाता, प्रयोग नहीं कर पाता। दूसरे यह कि भावों के उतार-चढ़ाव के अनुसार वह अपनी फसलों को बदल नहीं पाता, उनसे न बचाव कर पाता है, न ही तुरन्त फायदा उठा पाता है।

इन उदाहरणों पर एक टिप्पणी उभरी कि यह ज्यादातर सूचनाजनक सवाल हैं, यह स्वयं चिन्तन व विश्लेषण के दृष्टिकोण को बनाने में सहायक नहीं लगते। इस संदर्भ में यह भी कहा गया कि लोगों के मन में सोच-विचार के सवालों को लेकर एक सांस्कृतिक अवरोध है। स्थापित धारणा यही है कि हर सवाल का एक ही निश्चित व किताब में

लिखा हुआ उत्तर होता है । 'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम' के अनुभवों में भी देखा गया है कि शिक्षकों के इस नजरिए को बदलने में प्रशिक्षण के दौरान कितनी दिक्कत आती है । कभी-कभी कोई बच्चा एकदम लीक से हटकर, अपनी सोच समझ से उत्तर दे दे, तो उसकी सराहना कर उसे परमांक देने की बजाय शिक्षक उसे शून्य दे देते हैं । बच्चों की इस प्रवृत्ति के समर्थन में डा. परमेश्वरन् ने एक उदाहरण दिया। सवाल था : माँ के दूध में गाय के दूध से क्या ज्यादा है ? भौतिकी और रासायनिक कारणों को गिनाने की बजाय एक बच्चे ने उत्तर दिया—"प्यार"—और परिषद् की प्रतियोगिता में उसे परमांक मिले ।

खैर, उठाई टिप्पणी का उत्तर देते हुए डा. परमेश्वरन् ने अपनी दिक्कत सामने रखी–उनकी प्रतियोगिताओं में 8000 स्कूल के चार लाख बच्चे भाग लेते हैं। इतने बड़े पैमाने पर विश्लेषणात्मक प्रश्न पूछने में और उनका मूल्यांकन करने में जितनी दिक्कतें आएंगी, उनको सुलझाने में परिषद् के पास क्षमता नहीं है। फिर भी कुछ प्रश्न होते हैं जिनमें विश्लेषण का अंश रहता है—जैसे "केरल में सबसे ज्यादा धान किस जिले में पैदा होता है ? क्यों ?" (इसके लिए भी कुछ पूर्व जानकारी–वर्षा, मिट्टी आदि सम्बन्धी होना जरूरी है) । एक और ज्यादा महत्वपूर्ण उदाहरण :

क) गाय, जानवर, गधा, चीता....
ख) चील, तोता, चिड़िया, कौआ...

'क' और 'ख' के चार-चार नामों में से कौन-सा एक बाकी तीनों से फर्क है ? क्यों ?

और उसका बाकी तीन से क्या सम्बन्ध है ?

हाई स्कूल के स्तर पर बच्चों को 200 प्रश्नों का कोष दे दिया जाता है, जिनका जवाब उन्हें किसी एक पुस्तक से या एक अध्यापक से नहीं मिल सकता । उसे 40-50 पुस्तकों और अध्यापकों आदि से पूछताछ करनी पड़ेगी। बच्चों में स्वयं चेष्टा से ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह अच्छी ट्रेनिंग है ।

इस तरह की प्रतियोगिताएँ निम्न स्तरों पर होती हैं :

(1) प्राथमिक स्कूल (यूरेका)–कक्षा 4 तक
(2) उच्चतर प्राथमिक स्कूल–कक्षा 5 से 7 तक
(3) उच्चतर माध्यमिक स्कूल

(अगले अंक में जारी)

आपने सुझाया है

—अरविन्द गुप्ता, पुणे.

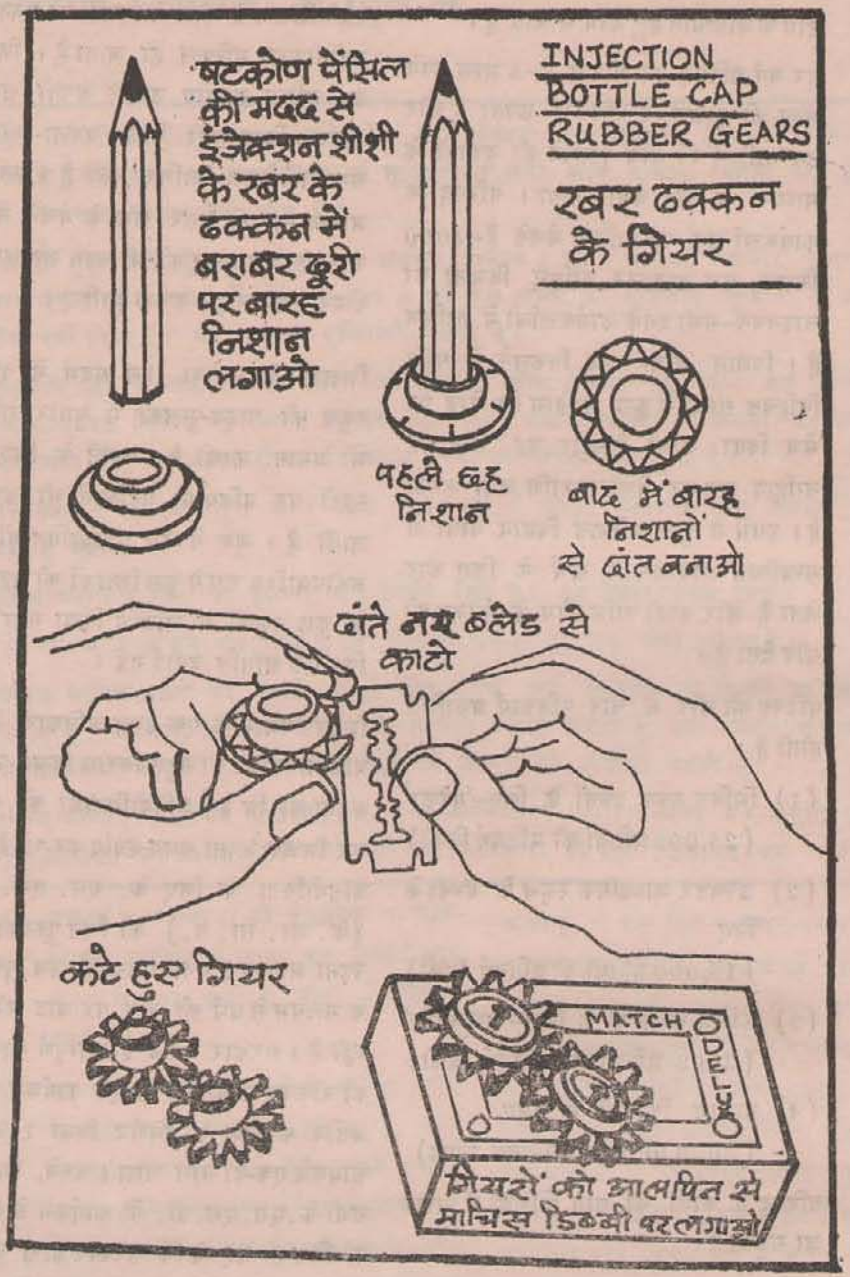

लाल बुझक्कड़ कहते हैं....

'शिक्षा ऐसी हो जो व्यक्ति को ज्ञानी, चतुर एवं जागरूक बनाने में सहायक हो जिससे कि वह अपनी जिन्दगी की जरूरतों को पूरा करने में सक्षम हो सके ।"

× × ×

"मुझे बोलने की हिम्मत ही नहीं पड़ती...."

"अरे, आप चर्चा के दौरान कुछ बोली ही नहीं ?"

"नहीं.....क्या बोलती ? मेरे पास कुछ था ही नहीं बोलने को। और बाकी लोग तो वही बातें कर रहे थे जो मैं सोच रही थी। तो ठीक है....."

लेकिन यह तो सच नहीं है। आप तो बीच-बीच में बुद-बुदा कर कई बातें कह रही थी मेरे पास बैठी हुई। उनमें से ऐसी कई बातें थीं जो चर्चा में किसी और ने नहीं उठाई। फिर कोई और बात कह दे, इसका इन्तजार क्यों ? आप खुद ही खुल कर, जोर से क्यों नहीं बोल पाई ?"

"असल में बात यह है कि हमें बहुत संकोच लगता है शिक्षक होती है। मर्दों के सामने बोलने में डर लगता है कोई हमें कुछ कह दे, तो सहन नहीं होगा।"

यह बात एक शिक्षिका ने कही, और तुरन्त पास बैठी कई शिक्षिकाओं ने अपने अनुभवों, अपनी भावनाओं के वर्णन की धार लगा दी। "कोई औरत अगर कुछ बात कहे, तो ये लोग जान बूझकर बात को खींचने की कोशिश करते हैं, मजाक बनाते हैं, सवाल पूछकर परेशान करते हैं, टीका टिप्पणी करके दबाने की कोशिश करते हैं....ऐसे में बोलने की हिम्मत नहीं पड़ती।"

"हम तो स्कूल में भी मर्द लोगों से ज्यादा बातचीत नहीं करतीं---काम की जरूरी बातें कह-सुन लीं, और बस।"

यह झलकी तो शिक्षकों-शिक्षिकाओं के साथ आयोजित एक तीन-दिवसीय कार्यक्रम की है। पर, औरतों को समझने में देर नहीं लगेगी कि इस स्थिति से हम रोज ही किसी न किसी तरह गुजरती हैं। हमारे मुँह पर किसी ने ताले नहीं लगाए, किसी ने नहीं कहा---'बोलो मत', कहीं संविधान में नहीं लिखा कि औरतों को अपने विचार अभिव्यक्त करने का अधिकार नहीं है।

औरत और मर्द की बराबरी का एलान आज बहुत लोग करते हैं और औरतों के प्रति अपने सम्मान का एलान भी। फिर, जब कोई औरत अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की कोशिश करती है, तो उसके प्रति पुरुषों का नजरिया समानता और सम्मान के भावों से इतना वंचित क्यों होता है ? जहाँ ज्यादातर लोग पुरुष हों वहाँ एक महिला का एक आध वाक्य भी बोल पाना लंका विजय कर पाने जैसा कठिन और साहसी काम क्यों बन जाता है ?

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता न होने के कई पहलू हैं। कहीं संविधान में इसकी मान्यता नहीं है, कहीं संविधान में मान्यता होने के बावजूद कुछ समुदायों के लिए यह अधिकार मान्य नहीं---सरकारी कर्मचारी, शिक्षक इत्यादि और जिन लोगों के लिए यह स्वतंत्रता मान्य है, तो उन्हें भी एक सीमा में रखने के तरीके हैं---गैर संवैधानिक तरीके जो इस स्वतंत्रता के प्रयोग को उन हदों के अन्दर रखते हैं जो समाज में स्थापित शक्तियों को मान्य हों। और भी तरीके हैं---जो इतने साफ-साफ नज़र नहीं आते। बहुत बारीक धागे जो होंठों पर ताला नहीं लगाते, पर उन्हें सिल देते हैं---इन्सान-इन्सान के बीच रिश्तों में नजरियों में समाए तरीके। हम सब इन्हें अपने-अपने अनुभवों से पहचानते हैं---जब एक सामाजिक माहौल हमें महसूस कराता है कि हम गौण हैं, हमारे पास जो भी क्षमता है उसका अर्थ नहीं है, मूल्य नहीं है, हम उपहास की वस्तु हैं। तब हमारी बोलने की हिम्मत नहीं पड़ती।

इस सन्दर्भ में औरतों की एक खास ऐतिहासिक विरासत है---पुरुषों के समक्ष औरत की अर्थहीनता की; घर के छोटे से दायरे में संकुचित होने की और इससे जुड़ी तमाम आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियाँ और सांस्कृतिक मूल्य।

—रश्मि पालीवाल

खून का पानी

कल के अध्यापक ने सोचा था कि दंड और पुरस्कार देने से ही बच्चों में बुद्धि आएगी।

कल के अध्यापक ने सोचा था कि पाठ्यपुस्तकीय पाठ और कविता रटने में ही ज्ञान धरे है।

कल के अध्यापक ने सोचा था कि उपदेश मात्र से व्यक्ति नीतिवान व धर्मी बन जाएगा।

उसने सोचा था कि सख्त नियमों की बेड़ियाँ पहनने से बच्चे संयमी बनेंगे।

उसने सोचा था कि शिक्षण में स्वतंत्रता देंगे तो विद्यार्थी पढ़ेंगे नहीं, इसलिए उन्हें दबाकर रखना चाहिए।

इसी क्रम में उसमें ज्ञान का सम्पूर्ण क्षेत्र विद्यार्थियों की पढ़ाई हेतु निर्धारित कर दिया और परीक्षा को ही एक मात्र जीवन-लक्ष्य मानकर, उसी की उपासना में अपने और विद्यार्थियों के खून पानी किया।

गिजुभाई

("मूछों वाली माँ" यानी गिजुभाई। 15 नवम्बर 1984 से गिजुभाई का जन्मशती वर्ष मनाया जाएगा।)

शिक्षक और शिक्षा

"अध्यापन के पेशे का एक उद्देश्य पाठ्यक्रम बनाने और उसे लगातार सुधारते रहने का है। हमारे देश में पाठ्यक्रम की रचना के काम को अध्यापक से दूर रखने की परम्परा काफी मजबूत हो चुकी है। शिक्षा के नीतिकार और अधिकारी मानते हैं कि भारतीय अध्यापक इस योग्य नहीं हैं कि उसे पाठ्यक्रम बनाने या उसमें परिवर्तन करने जैसा महत्त्वपूर्ण काम दिया जाए। इस मान्यता के आधार पर पाठ्यक्रम ऊँचे शोध संस्थानों और अधिकारियों के कार्यालयों में रचा जाता है और उसे एक आदेश की तरह स्कूलों में भेज दिया जाता है। कोई आश्चर्य नहीं कि पाठ्यक्रम निर्माण के विकेन्द्रीकरण की बात हमारे यहाँ सोची भी नहीं जाती। यह सीधी बात भारतीय शिक्षाविदों और नौकरशाही की समझ में नहीं आती कि अध्यापकों की हिस्सेदारी से उपजा पाठ्यक्रम ही बच्चे के जीवन और परिवेश को बारीकी और ईमानदारी से प्रतिबिम्बित कर सकता है और ऐसे पाठ्यक्रम के बगैर स्कूल की शिक्षा बच्चे के लिए एक आकर्षक अनुभव नहीं बन सकती। इसलिए, पाठ्यक्रम की रचना और लगातार पुनर्रचना में हिस्सा लेना अध्यापकीय पेशे के उद्देश्यों में शामिल किया जाना चाहिए।"

कृष्ण कुमार

"अध्यापन का पेशा : उद्देश्य और मूल्य"*

ध्यान रहे कि दज का एक महत्वपूर्ण माप-दण्ड मतभेद प्रकट करने और राजनैतिक गतिविधि में भाग लेने का अधिकार भी है... मात्र कानून द्वारा शिक्षकों के दर्जे में गुणात्मक सुधार होना असम्भव है। यदि कानून से ही सब कुछ हो सकता तो हमारे समाज से विषमता और गरीबी बहुत पहले खत्म हो गए होते। एक डॉक्टर का दर्जा ऊँचा इसलिए नहीं होता कि उसे 'इंडियन असोसिएशन' में पंजीयन कराना पड़ता है। बल्कि इसलिए होता है क्योंकि उसका काम निहायत जरूरी है और कब उसकी जरूरत पड़ेगी, कहा नहीं जा सकता। यदि पंजीयन को ऐच्छिक बना दिया जाए और डॉक्टरों को छूट हो कि वे बिना पंजीयन के भी प्रेक्टिस कर सकते हैं तो क्या डॉक्टरों का दर्जा कम हो जाएगा ?"

विजय वर्मा

"शिक्षक का समाज में दर्जा"*

"मध्य प्रदेश में अधिकांश शिक्षा संस्थाएँ शासन के द्वारा संचालित होने के कारण इनमें कार्यरत शिक्षक शासकीय कर्मचारी हैं। अन्य शासकीय कर्मचारियों की भाँति मध्यप्रदेश सिविल सेवा आचरण नियम शिक्षकों पर भी लागू है। इसके फलस्वरूप राजनीतिक गतिविधियाँ तो दूर, औसत शिक्षक अपने विचारों को खुलकर अभिव्यक्त करने से भी कतराता है। शिक्षा में विचारों के खुलेपन की अनुमति देने की दृष्टि से यह एक अवांछनीय स्थिति है।" —**अरविन्द गुप्ते**

"शिक्षक व्यवसाय को गतिशील कैसे बनाएँ"*

"शिक्षक बहुत बेचारा है, उत्पीड़ित है, शोषित है, मक्कार है, कमजोर है, दब्बू है, गरीब है, दर्जा नीचा है, काम के बोझ से लदा है (यानि कुल मिलाकर तय करना मुश्किल है कि क्या है !) क्योंकि उसके ऊपर आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक दबाव हैं आदि-आदि। इस सब की बात हम नहीं करेंगे। अरे नहीं, महत्वपूर्ण नहीं है ऐसा किसने कहा—पर आप पढ़िऐ पर्चे, जो है सो यही लिखता है—उसका दर्जा बढ़े, आर्थिक परिस्थिति सुधारें, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मिले, राजनैतिक दबाव हटे, ट्रांस्फर बन्द हो, मकान मिले, दवाई मिले आदि-आदि। यह सब हो इससे असहमति थोड़े ही है—यह तो सबको मिले। पर हम कुछ तो नई बात करें ना—शिक्षक की सृजनशीलता की, कल्पनाशीलता की...!" —**साधना सक्सेना**

"संवाद का एक प्रयास"*

"शिक्षक राष्ट्र निर्माता है, पढ़कर गर्व होता है। पर निर्माण कार्य शुरू करने पर पता चलता है कि निर्माण स्थल, उसकी योजना, लागत व कच्चा माल आदि का कुछ तय नहीं है। स्थानीय उपलब्धि के आधार पर जनसेवा, राष्ट्र सेवा का कार्य हवा में शुरू हो जाता है। ईंट को बिना किसी सीमेंट के जोड़ना और बिना गोले-गुनिए के नींव हीन भवन निर्माण करना टेढ़ा काम है, पर वाह रे राष्ट्र निर्माता तुमने तो यह भी कर दिखाया, भले कागजों पर क्यों न हो।"

एम. एल. नागेश

"टूटी सीढ़ियाँ" (पलाश)

"आखिर हमारे समाज में शिक्षा की औकात क्या है.....? सार्वजनिक समारोह में तहसीलदार और नायब तहसीलदारों के बाद की पंक्तियों में स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्राचार्यों को बैठा जिसने न देखा हो, वह कभी भी देख सकता है....। सवाल यह है कि जिस समाज में शिक्षा-विभाग का सम्भागीय शिक्षा अधीक्षक जिसके अन्तर्गत पाँच जिलों के 6720 स्कूलों, 20722 शिक्षक और 809129 छात्रों का प्रशासनिक नियंत्रण हो वह एक जिलाधीश और उप-जिलाधीश की घुड़कियाँ सुनकर कुछ कह सकने की स्थिति में नहीं होता और बेबसी में अपमान के घूँट समाज के समाने पी रहा है। यह हालत तो है अधिकारियों की, अब आप कल्पना करिए उस शिक्षक की जिससे समाज तो यही सलूक करता ही है, शिक्षा विगाग के यही अधिकारी और पूरी नौकरशाही इससे भी अधिक अपमान जनक व्यवहार करते हैं। वह शिक्षा विभाग और उसके शिक्षक इस समाज को क्या शिक्षित करेंगे ?" —**श्याम बोहरे**

"शिक्षा की औकात क्या है ?" (पलाश)

*(राष्ट्रीय शिक्षा आयोग परिसंवाद— दिशाबोध पर्चा)

पहेलियाँ

1. एक दूध वाले के पास दूध से भरा हुआ आठ लीटर का डिब्बा है। उसके पास पाँच लीटर और तीन लीटर वाले खाली डिब्बे हैं। इन डिब्बों की सहायता से वह दो ग्राहकों को चार-चार लिटर दूध किस प्रकार देगा ?

2. नीचे बनी आकृति बिना पेंसिल उठाए और बिना कोई लाईन दोहराए बनाओ।

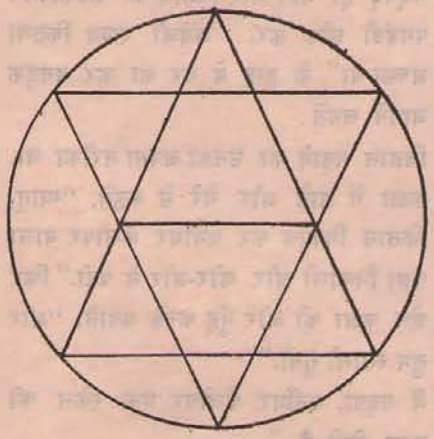

3. नौ इकाई लम्बे और चार इकाई चौड़े क्षेत्र को दो टुकड़ों में इस प्रकार काटो कि कटे हुए टुकड़ों से वर्ग का निर्माण हो जाए।

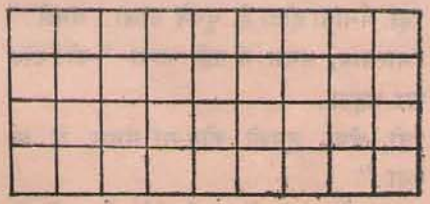

4. इस चित्र को चार टुकड़ों में इस प्रकार काटो कि कटे हुए टुकड़ों से वर्ग का निर्माण हो जाए ।

5. तीन एक से वर्गों को बताई गई आकृति के अनुसार रखने से ट्रोमिनो बनता है। इस ट्रोमिनो के वर्ग 1 सेन्टीमीटर भुजा वाले हैं। 8 × 8 से.मी. के वर्ग में ऐसे 21 ट्रोमिनो बनाना हैं। उसमें वर्ग के एक खंड का उपयोग नहीं होना है।

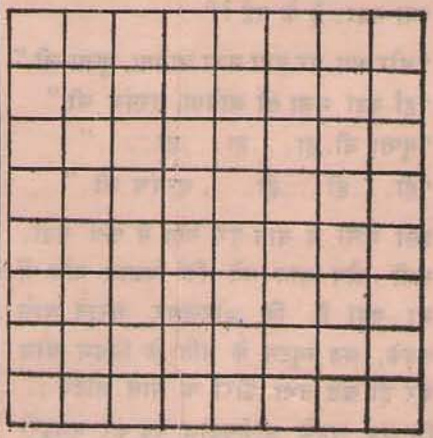

ट्रोमिनो

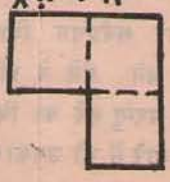

6. नीचे के चित्र में कुल कितने वर्ग (चौकोन) हैं ?

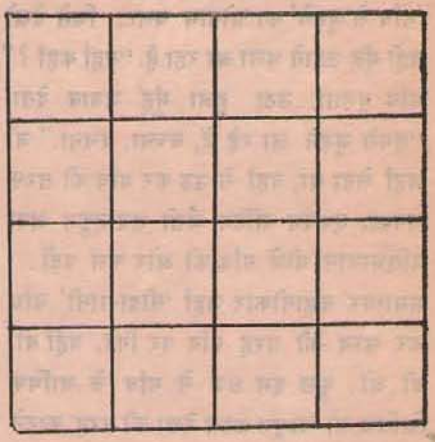

7. इन नौ बिन्दुओं को चार सीधी रेखाओं से जोड़ो। ध्यान रखो कि शुरू से आखिर तक तुम्हारी पेंसिल कागज से न उठे।

—डॉ. सुरेश मिश्रा
मंडला

बाअदब, गुप्ताजी वैज्ञानिक बना रहे हैं....

ज्ञान चतुर्वेदी

स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद, देश में 'गाँव से जुड़ने' का प्रोग्राम चला. जिसे देखो वही मुँह उठाये चला आ रहा है. "यहाँ कहाँ ?" गाँव पूछता. उठा हुआ मुँह जवाब देता, "तुमसे जुड़ने आ रहे हैं, बच्चा, बचना." जो जहाँ लेटा था, वहाँ से उठ कर गाँव की तरफ लपका. एकदम शंटिंग जैसी तबाहकुन अदा प्रतिभावान चीजें गाँव की ओर चल पड़ीं. समान्तर कहानीकार जहाँ 'सीदा-सानी' बाँध कर लम्ब की तरह गाँव पर गिरे, वहीं बी. डी.ओ. कुछ इस धज से गाँव के आर्थिक क्षितिज को मासूम सरल रेखा की तरह काटने लगे कि उनके तथा सरकार के आमने-सामने के कोण बराबर हो गये. क्षितिज जो था सो गायब हो गया.

जुड़ाई के इसी सुहावने मौसम में विज्ञान का ब्रह्मचर्य भी टूटा और वह भी गाँव से जुड़ने के लिए, जिला शिक्षाधिकारी की जीप पर सवार हो कर चल दिया. तभी से मेरे ग्राम की बेसिक प्राथमिक शाला के श्री चिरंजीलाल गुप्ता के कर्त्तव्यों की सूची में वैज्ञानिक तैयार करना भी शामिल हो गया. तो गुप्ता जी आजकल गाँव में वैज्ञानिक बना रहे हैं.

अभी गाँव गया, तो गुप्ता जी मिले. अतिरिक्त भावुक हो कर पूछने लगे कि क्या मुझे वे दिन याद हैं, जब वे मुझे भौतिक शास्त्र अथवा ऐसा ही सुसरा कुछ पढ़ाने की चेष्टा किया करते थे.

हाँ, मुझे वे लगभग सुनहरे दिन याद हैं, उन दिनों मैं प्रायमरी स्कूल का छात्र था. ग्रामीण पाठशाला थी, सब कुछ शान्तिपूर्ण. एकाएक, एक दिन स्कूल में तिलस्म, रोमांच, रहस्य तथा प्रगतिशील वातावरण फैल गया. हम छात्रों की रोमांचित भीड़ को हेडमास्टर रामसेवक जी ने, प्रातः की प्रार्थना-सभा में बताया कि अब स्कूल में विज्ञान आ गया है, जिसे साइंस भी कहते हैं.

"अब सबको विज्ञान पढ़ना पड़ेगा." ऐसा कह कर वे तेजी से गाँव की ओर निकल गये, जहाँ यही समाचार उन्होंने सरपंच, हलवाइयों, मोचियों, दर्जियों तथा मवेशियों को सुनाया. सम्पूर्ण गाँव थरथरा उठा.

सरपंच जी स्कूल के पास से गुजरे, तो चिरंजीलाल गुप्ता जी से इस सन्दर्भ में पता करने लगे "गुप्ता जी, सुना कि विज्ञान आ गया, इस स्कूल में."

"हाँ साब, अभी हेडमास्टर ने बताया."

"बहुत बढ़िया रहा, जे तो."

"हाँ साब, बढ़िया रहा."

"अब मजा आयेगा, हा, हा, हा."

"बहुत मजा आयेगा, ही, ही, ही."

"आप ही पढ़ायेंगे, गुप्ता जी ?"

"और कौन सुसरा पढ़ायेगा ? अपुन पढ़ाने से कभी पीछे नहीं हटे, सरपंच जी. अरे, यही न होगा कि न बनेगा पढ़ाते ? सो न बने. नहीं बना, सो नहीं बना. अपने बाप का क्या गया. है के नई ?"

"और क्या, पर बड़ा मजा आयेगा, गुप्ता जी."

"हाँ बड़ा मजा तो आयेगा, सरपंज जी."

"गुप्ता जी, हा...हा...हा...."

"ही...ही...ही..., सरपंच जी."

इसी शैली में बात पूरे गाँव में फैल गयी. सभी लोग जान गये कि विज्ञान गाँव में आ गया है, कि ढोर-ढंगर चराने वाले लड़के, अब न्यूटन के गति के नियम सीख कर ही खेत तथा ढोरों के पास लौटेंगे ; कि अब लड़के आर्कमडीज पढ़ कर मजदूरी करने के नये तरीके ईजाद करेंगे ; कि अब बड़ा मजा आने वाला है.

इस तरह मेरे सर्वप्रथम विज्ञान शिक्षक गुप्ता जी ही बने. वैसे वे इतिहास विषय से बी.ए. थे, परन्तु हर्ष का विषय यह था कि विज्ञान के बारे में भी उनका ज्ञान इतिहास से कम न था. वैसे इतिहास उन्हें कतई नहीं आता था. विज्ञान तथा इतिहास में वे प्रायः भ्रमित हो जाया करते थे और बताने लगते थे कि किस प्रकार अलाउद्दीन खिलजी आपेक्षिक घनत्व निकालते घूमा करते, "कुछ भी कहो, यह सुसरा विज्ञान है कठिन, समझ में तो एकदमई नहीं आता. गोरे अंग्रेज लोग गिजा खाते हैं और सटासट समझते जाते हैं. हम ठहरे, सुसरे कलुवा. सुखी रोटी चबा रहे हैं और भैया बिग्यान पढ़ेंगे. वाह !"

इस प्रकार वे अपने को कलुवा कह कर गद्‌गद् हो जाने और विज्ञान की कंटकाकीर्ण पगडंडी छोड़ कर, "अंग्रेजी राज्य कितना अच्छा था" के हाइ वे पर आ कर बगटुक भागने लगते.

विज्ञान पढ़ाने का उनका अपना तरीका था. कक्षा में आते और मेरे से कहते, "ग्यानू, किताब निकाल कर वर्नीयर कैलीपर वाला पन्ना निकालो और जोर-जोर से पढ़ो." फिर शेष कक्षा की ओर मुँह करके बताते, "और तुम स्सालो सुनो."

मैं पढ़ता, वर्नीयर कैलीपर एक स्केल की तरह होती है."

वे मुझे रोक कर सारी कक्षा को समझाते, "समझे, वर्नीयर कैलीपर एक स्केल की तरह होती है."

मैं आगे बाँचता, "इस पर एक घूमने वाला पैमाना होता है."

वे समझाते, "हाँ, समझे. इसमें एक, घूमने वाला.....क्या होता है सुसरा ?'

"साब पैमाना."

"हाँ, पैमाना होता है, घूमने वाला. समझे."

"मास्साब, समझ में नहीं आया." कोई टोक कर कहता.

"तो, भैया, हमको कौन-सा समझ में आ गया."

गुप्ता जी जवाब में अपनी संवैधानिक स्थिति

स्पष्ट कर देते, "ऐसे समझ में न आयेगा. विज्ञान है. सुसरी कठिन चीज है. बाप से कहो कि गिजा खिलाये, तब शायद कुछ समझ में आये. नहीं तो इत्ता ही समझो कि कोई कैलीपर-सैलीपर, जैसी चीज होती है. इत्ता भी समझ गये, तो भोत है. अरे, खाने को गिजा नहीं और केलीपर पढ़ेंगे. 'सकल' सेलीपर, पढ़े कैलीपर. हम ठहरे-कलुवा...." इसके बाद वे कलुवा, गिजा और अंग्रेजवाली शाश्वत कथा कहते. फिर बताते, "विज्ञान सीखना ही है, तो बाप से कह कर हमारी ट्यूशन लगवाओ. बिना हमसे ट्यूशन पढ़े पास होना चाहते हो, तो या तो तुम्हें पागल कुत्ते ने काटा है अथवा तुम हमसे जूते खाने के चक्कर में हो."

इसी जायज कारण से, हम लोग गुप्ता जी के घर, ट्यूशन पढ़ने जाया करते थे. हम लोग संध्या होते ही गुप्ता जी के घर पहुंच जाते. वे कहते, "तो, तुम लोग आ ही गये."

"जी, मास्साब."

"तो फिर निकालो किताब और पढ़ो वर्नीयर कैलीपर वाला पाठ...."

मैं पारायण के लिये किताब निकालता. तब तक वे कहते, "सुनो ग्यानू, तुम तब तक बकरी दोह लो. छुप कर, नजर बचा कर दोहना, क्योंकि बकरी पड़ोसवाले की है. तब तक ब्रिजमोहन, बांच लेगा किताब."

इसके बाद वे मुसकरा कर कहते. "अरे हां, बाचना ही तो है ससुरी. समझ किसे आती है. विज्ञान ससुरी बड़ी कठिन विद्या है."

जब तक किताब निकलती, तब तक आधे छात्र बकरी दोहने, सानी बनाने, कन्दील साफ करने और मिट्टी का तेल लेने निकल जाते. शेष छात्रों को गुप्ताजी गिजा तथा कलुवा वाली जातक कथा सुनाते. रात होने पर, हम लोग घर लौटते और रास्ते में, गुप्ताजी की कमीज से मारी गयी चवन्नी के पीछे मारपीट करते. इस प्रकार, विज्ञान की शिक्षा का तात्कालिक सुखद परिणाम यह हुआ कि हम, बकरी दोहने तथा कुत्ते आदि की बोली हू-ब-हू बोलना तो सीख ही गये, साथ ही गुप्ता जी की व्यक्तिगत रुचि तथा कतिपय अप्रकाशनीय आदतों के कारण, चन्द ऐसी महत्वपूर्ण बातें भी सीख गये, जो कालान्तर में हमारे दाम्पत्य जीवन में बड़ी काम आयीं."

विस्तार में इतना कहने के बाद, संक्षेप में कहूँ, तो विज्ञान शिक्षा, हमारे अवैज्ञानिक व्यक्तित्व का बाल भी टेढ़ा नहीं कर पायी.

उसी स्कूल के कोने में, नाजायज बच्चे-सा तिरस्कृत एक कमरा था, जिसे हम लोग प्यार से प्रयोग शाला (घर का नाम "लेबोट्री") कहते थे, उस कमरे में, एक आलमारी के अन्दर, आशंकित तथा भयभीत सी कुछ कांच की चीजें पड़ी रहती थीं, जिन्हें कोई नहीं पहचानता था. गुप्ता जी, चटनी तथा अचार वगैरह रखने के लिये कांच के कुछ बर्तन अपने घर ले गये, जिससे नाराज हो कर, बाद में हेडमास्टर साब, आलमारी ही उठवा कर घर ले गये.

देश के शिक्षा मंत्री का यह मासूम विश्वास था कि हम छात्र, उसी कमरे में बैठ कर इन कांच के अवशेषों को, जो विज्ञान के क्रियाकर्म के पश्चात् शेष रही अस्थियों की तरह वहाँ फैले थे, बीन कर कोई ऐसा करतब करेंगे कि आनन-फानन में, आपेक्षित घनत्व से ले कर, लैंसों की "फोकल लैंथ" तक हाथों-हाथ निकलने लगेगी. उनको इस बात का भी पक्का संदेह था कि हम लोग, इसी एक कमरे में छुपकर, रसायन विज्ञान तथा जीवशास्त्र सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रयोग भी कर रहे हैं. वे अपने वक्तव्यों में प्रसन्नता व्यक्त करते कि गाँव-गाँव में भैंसें बन रही हैं, मेंढक चिर रहे हैं, तथा बालकगण 'टामस अल्वा एडीशन' बने (नाक बहाते) घूम रहे हैं।

प्रेक्टिकलवाले पीरियड में गुप्ताजी कभी-कभी हमें इस कमरे की सैर पर ले जाते। लड़के पिकनिक के उत्साह से कमरे में घुस जाते और तितर-बितर की भारतीय शैली में, शिक्षा पर 'एम्बुस' लगा कर छापामारों की तरह बैठ जाते। तब गुप्ताजी आलमारी से कोई डिब्बा निकालते। डिब्बे में झांकते हुए, वे कहते "न जाने क्या भरा है सुसरा सुफैद पावडर सा."

हम चुप रहते।

वे फिर कहते, "ग्यान जरा चखो तो"....

मैं चखकर बताता, "साब, बहुत कड़वा है।"

तब वे सन्तोषपूर्वक कहते, "कड़वा है?"

मैं भी यही शक कर रहा था कि यह संखियाँ हैं। बड़ा तेज विष होता है। मुँह धो लो नहीं तो मर जाओगे।"

मुँह साफ करके आता, तब तक वे दूसरा डिब्बा निकाल कर उसे चखवाते और यह पाकर कि यह नौसादर है, उसे अपने झोले में रख लेते, "नौसादर बड़े काम की चीज होती है। बर्तन पर कलई करने में काम आती है।"

फ़िर वे झोला उठाते और चले जाते।

कभी-कभी इस 'प्रयोगशाला' का नाटक का दृश्य क्रमांक दो भी खेला जाता।

इसके अन्तर्गत, 'भौतिक शास्त्र' के प्लासी के मैदान में हम रंणबांकुरे एकत्रित होते तथा लेंसों की "फोकल लेंथ" निकालने के प्रश्न पर युद्ध प्रारंभ होता। गुप्ताजी प्रयोग से पूर्व की समस्त तैयारियाँ करते, अर्थात् दस-बीस उत्साही छात्रों के मुँह पर झापड़ तथा पीठ पर लात जमाते, और बाकी उदीयमान वैज्ञानिकों के सर फोड़ डालते। इसके पश्चात् पूछताछ प्रारंभ होती, क्यों रामसेवक, वो लैंस कहाँ धरे हैं?" (राम सेवक "प्रयोगशाला सहायक" के पद पर थे तथा वैज्ञानिक ढंग से हेडमास्टर साहब के घर सब्जी आदि लाने के प्रयोग किया करते थे।)

रामसेवक उक्त प्रश्न के उत्तर में एक प्रश्न पूछते, कौन लैंस साब?"

"अरे वही ससुरा काँचवाला."

"वो लैंस तो हेडमास्टर साहब ने अपने चश्मे में लगवा लिए हैं।"

"हेडमास्टर की यही तो खराब आदत है। हम उस दिन कह रहे थे कि हमें अपनी अम्मा के चश्मे के लिए लेंस ले जाना है। सुन लिया होगा, तो खुदई ले गये. आँख फूट जायेगी, तब मालूम होगा। ईश्वर सब देखता है। घोर युग आ गया है।"

इतनी भव बाधाओं को पार करते हुए हम परीक्षा में बैठे। सभी छात्रों ने "एक्सटर्नल"

(शेष पृष्ठ 33 पर)

आखिर पक्षी क्या हैं ?

दिन था शुक्रवार। हाट लगने का दिन। और—सवालीराम क्लब के सदस्यों के मिलने का दिन। सवालीराम क्लब के सारे बच्चे शुक्रवार के दिन मिलते थे। और एक-दूसरे को बाताते थे कि उन्होंने क्या-क्या किया, क्या-क्या खोजा, क्या-क्या सोचा। और आगे क्या करेंगे।

रमेश ने बात शुरू की। वह साबुन के बारे में बात करने लगा। रमेश के बापू की बस्ती में एक छोटी-सी किराने की दुकान है। रमेश बहुत गौर से देखता है कि उसकी दुकान में क्या-क्या सामान आता है, कहाँ से आता है, कौन लाता है, उसके बापू कैसे यह सामान खरीदते हैं। कैसे बेचते हैं, किसको बेचते हैं! कौन खरीदता है, कौन नहीं खरीदता है! रमेश अपने दोस्तों को आज बता रहा था कि कितनी तरह का साबुन होता है। और अलग-अलग तरह का साबुन कैसा बनता है....घर का साबुन, मशीन का बना साबुन आदि। उसने कहा कि वो साबुन के बारे में जो कुछ जानता है उसे लिखकर 'चकमक' को भेज देगा। (तो अगले किसी अंक में साबुन बनाने के बारे में पढ़ने को तैयार हो जाओ, रमेश लिखके भेजने वाला है।)

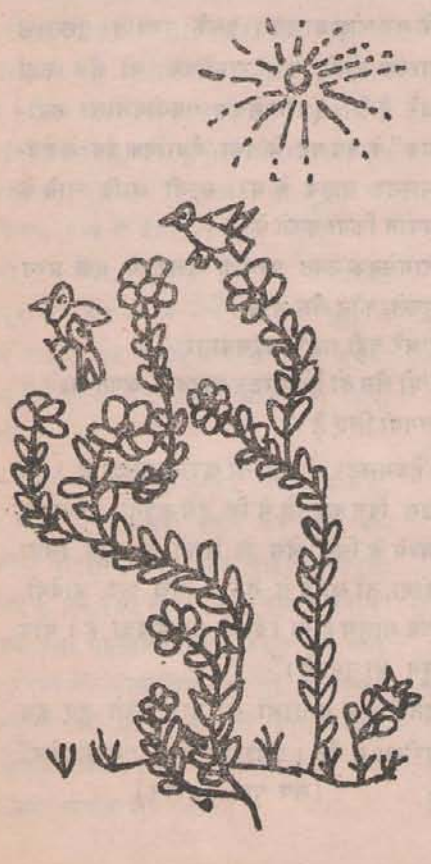

मंजू सबको बता रही थी कि उसने कौन-कौन सी चिड़िया देखी हैं। उसने किसी किताब में पढ़ा था कि खंजन पक्षी हिमालय से 2000 किलोमीटर दूर तक उड़ कर जाते हैं। मंजू को आश्चर्य इस बात का था कि पक्षी इतनी दूर तक उड़कर एक जगह से दूसरी जगह कैसे जाते हैं?

चिड़ियों पर बात चली तो जोगिन्दर पूछ बैठा, "बताओ, चमगादड़ चिड़िया है या नहीं?"

"बिलकुल है।" प्रीति बोली, "उसके पंख होते हैं। काश मेरे भी पंख होते, तो मैं भी उड़-कर दूर-दूर तक जाती।"

"क्या बेकार की बात कर रही है।" सलीम ने झट कहा, "मेरे पिताजी ने मुझे बताया था कि चमगादड़ चिड़िया नहीं है। चमगादड़ तो सीधे बच्चे पैदा करती है, चिड़ियों की तरह अण्डे नहीं देती। और चिड़िया अपने बच्चों को अपने शरीर से दूध कहाँ पिलाती है? चमगादड़ तो अपने बच्चों को दूध पिलाती है।

यह सुनकर बच्चे चुप हो गये। चमगादड़ के बारे में उन्होंने ये बातें पहले नहीं सुनी थीं। सलीम ने कुछ रुककर एक बात और बताई, "और पता है—चमगादड़ के चिड़िया जैसे पंख भी नहीं होते, उनके तो झिल्ली सी होती है। यह शरीर के दोनों ओर से बढ़कर हाथों की ऊँगलियों पर मढ़ी होती है, जिसके सहारे वे उड़ पाते हैं।"

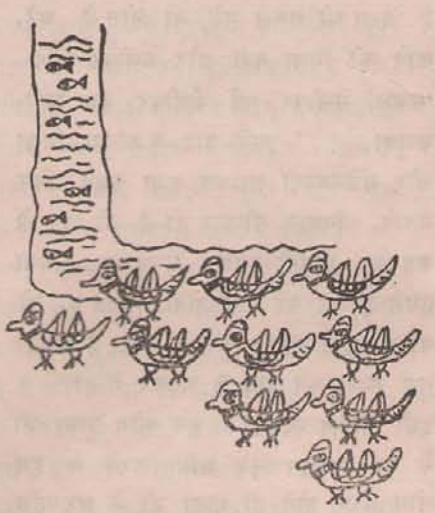

अब तो बच्चे चकरा गए। गहरी सोच में पड़ गए, फिर चिड़िया आखिर किसे कहें? "चिड़िया उड़ती है" रिकु बोला।

"अरे भाई, उड़ते तो चमगादड़ भी हैं। और मक्खियाँ? मक्खियाँ भी तो उड़ती हैं। अब कहो मक्खियों को चिड़िया कहोगे क्या?" शान्ति ने तर्क किये।

बच्चे हँसे, पर सिर खुजलाते रहे। रधु फिर बोला, "चिड़िया गाती हैं, चिहुँकती हैं।

"गाना तो मैं भी गाती हूँ भाई।" नफीसा बोली, "पर मैं तो चिड़िया नहीं हूँ। होती तो क्या खूब मजा आता।" और यह भी तो सोचो, टिड्डा भी तो एक तरह से 'गाता' ही है, अपने पंखों और पैरों को एक-दूसरे से रगड़ता है तो कैसी आवाज निकलती है—तो क्या वह भी चिड़िया है?"

"फिर सारी चिड़ियाएँ तो गाती नहीं हैं," सलीम बोला "तालाब में जो बत्तख है न—वो सिर्फ 'क्वेक, क्वेक' ही करती रहती है। यह भी कोई गाना हुआ?"

चक्कर में चक्कर.....चिड़िया आखिर किसको कहें? बच्चे सोच में डूबे हुए चुप थे। अचानक रीता बोल उठी, "मुझे मालूम है, चिड़ियों के चोंच होती है।"

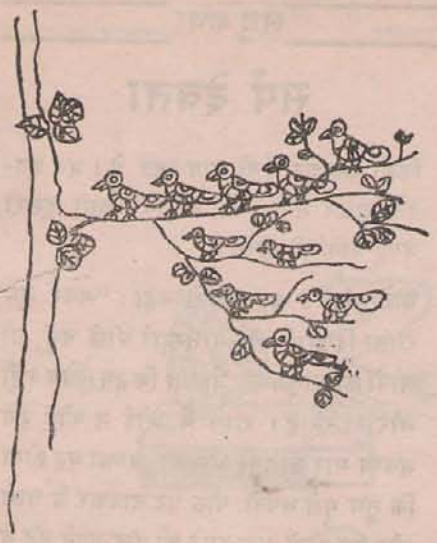

"हाँ, हाँ ठीक है पर कई चिड़ियों की चोंच ठीक से दिखाई नहीं देती", जोगिन्दर बोला।

"जैसे ?" किसी ने कहा।

"उल्लू को अगर सामने से देखो, तो ऐसा लगता है जैसे उसकी चोंच ही नहीं है," जोगिन्दर ने कहा।

"चिड़िया दो पैरों पर चलती हैं, बाकी सब जानवर चार पैरों पर चलते हैं, और कीड़ों-मकोड़ों के तो कितने सारे पैर होते हैं," प्रीति बोली।

"अरे इसमें क्या--दो पैरों पर तो हम भी चलते हैं। और मैं तो लड़की हूँ, चिड़िया नहीं।" नूतन ने कहा।

"चिड़िया अण्डे देती है।" रघु ने चहककर कहा।

"हो-हो--मैंने कितने ही मेंढक के अण्डे इकट्ठे किए हैं—बारिश के मौसम में। मेंढक तो चिड़िया नहीं है। और चींटी और मछली के भी तो अण्डे होते हैं।" मंजू ने बात काटते हुए कहा।

रघु ने धीरे से सुझाया "शायद सिर्फ चिड़ियाएँ ही घोंसले बनाती हैं।"

"अरे नहीं--कैसी बात करते हो? कितने जानवर और कीड़े-मकोड़े घोंसला बनाते हैं। और कोयल को देखो, वह तो घोंसला बनाती ही नहीं। दूसरी चिड़ियों के घोंसले में अपने अंडे देती है।" सलीम ने कहा।

फिर प्रीति जोर से बोल पड़ी "मुझे पता है, मुझे पता है . . . सुनो चिड़ियों का शरीर परों से ढका रहता है।"

. . . . अरे हाँ. . . . बच्चों ने सोचा। ठीक तो है, यही तो एक चीज हैं जो चिड़ियों को और जानवरों–कीड़े-मकोड़ों से एक दम अलग करती है। जिसके भी पर हों वह चिड़िया हुई। और सभी चिड़ियों के पर होते ही हैं।

बच्चों को चैन मिला, उत्तर मिला! इसलिए सिर हिला-हिला कर मुस्करा रहे थे। अब बात आई पकड़ में। उनके पास ही रमेश के बड़े भाई बैठे थे--जो कॉलेज में पढ़ रहे हैं। वो बच्चों को और बहुत-सी बातें बताने लगे--चिड़ियों के उड़ने के बारे में, उनके पंखों और परों के बारे में। पर यह सब अगले अंक में। तब तक के लिए नमस्ते।

रश्मि पालीवाल
होशंगाबाद

सच्चाई तो यह है....

हमने बच्चों को सवालों का हल तो दिया,
परन्तु आत्म विश्वास खुद रख लिया।

हमने बच्चों को रटना तो सिखाया है,
पर सोच शक्ति अपने पास रख ली है।

हमने परीक्षा में बच्चों को नम्बर अवश्य दिए हैं,
पर ज्ञान के भंडार को अपने पास रख लिया है।

असल में, सच्चाई तो यह है, कि हमने बच्चों से कभी सवाल पूछे ही नहीं हैं। और जब कभी हमने सवाल पूछने का ढोंग किया भी है, तो वह भी इसी उद्देश्य और अपेक्षा से किया है, कि बच्चे उन्हीं उत्तरों को, उन्हीं शब्दों में उलट दें, जो हमने उन्हें रटवाएँ हैं।

बच्चों के प्रति इससे घोर अन्याय और क्या हो सकता है ?

इसका अन्त होना चाहिए।

लाल बुझक्कड़ कहते हैं...

बात पते की जानो
अपनी-अपनी सीमा मानो

× × ×

जिसे दोस्त बना सकता हूँ
उसे ही कुछ सिखा सकता हूँ

× × ×

गर बदलना पड़ी अपनी योजना कभी
तो भी घबराने की बात नहीं

(पृष्ठ 31 का शेष अंश)

साहब के नश्ते-पानी के लिए चन्दा किया जिससे कालान्तर में गुप्ताजी ने, "अंडर-वीयर" आदि बनवा लिये। इस तरह उनके व्यक्तित्व में वैज्ञानिक 'टच' आ गया। "एक्स-टर्नल" ने इतनी सुन्दर प्रयोगशाला होने पर गुप्ताजी को बधाई दी और हम सभी को प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करके एक श्लोक पढ़ा। दरअसल, वे संस्कृत के शिक्षक थे।

इस प्रकार वैज्ञानिक बना और आपकी सेवा में उपस्थित हो गया। प्रसन्नता का विषय है कि परिस्थितियाँ बदली नहीं हैं। ग्रामीण परिवेश में, गुप्ताजी अभी भी लगातार वैज्ञानिक बना रहे हैं। भविष्य पूरी तरह उज्ज्वल हैं, मेरे जैसे बहुत से आ रहे हैं, बाअदब. . . .

(म. प्र. सन्देश से साभार)

विकलांगता क्या है ?

मान्यता और वास्तविकता

ज्यादातर लोगों ने विकलांग लोगों के बारे में कुछ मान्यताएँ बना रखी हैं जो वास्तविक नहीं है। इसका कारण है कि हम इन लोगों के बारे में ठीक से नहीं जानते। इनकी विकलांगता जरूरतों और क्षमताओं के बारे में हमारा अज्ञान अक्सर इनका बोझ और भारी बना देता है और हम जो कुछ करते हैं उसमें डर, उदासीनता और अन्धविश्वास होता है।

मान्यता	वास्तविकता
मानसिक रूप से पिछड़े बच्चे सामान्य बच्चों से अलग दिखाई देते हैं।	मानसिक रूप से पिछड़े ज्यादातर बच्चे कुछ ही पिछड़े होते हैं और वे सामान्य बच्चों जैसे दिखाई देते हैं।
सीखने की समस्याओं से ग्रस्त बच्चों के दिमाग में खराबी होती है।	सीखने की समस्याओं से ग्रस्त बच्चों के दिमाग में किसी खराबी का होना जरूरी नहीं। हाँ, कुछ बच्चों के स्नायु मंडल में खराबी हो सकती है।
भावात्मक समस्याओं वाले बच्चे अपने आस-पास के लोगों की निगाह में नहीं आते।	भावात्मक समस्याओं वाले बच्चे चाहे वे उग्र हों या शान्त, आसपास के लोगों की निगाह में बड़ी आसानी से आ जाते हैं।
वाणी या भाषा की समस्याओं से ग्रस्त बच्चे भावात्मक रूप से पीड़ित या मानसिक रूप से पिछड़े होते हैं।	इन समस्याओं से ग्रस्त बहुत से बच्चों में मानसिक पिछड़ेपन या भावात्मक समस्याओं के कोई लक्षण नहीं होते।
तुतलाने वाले बच्चे वयस्कों की तरह तुतलाते रहते हैं।	कुछ बच्चे वयस्कों की तरह तुतलाते रहते हैं, लेकिन ज्यादातर किशोरावस्था में तुतलाना बन्द कर देते हैं।
बहरे बच्चे गूँगे भी होते हैं।	हालांकि सुनने में कठिनाई के कारण भाषा सीखना मुश्किल हो जाता है पर ज्यादातर बहरे बच्चे भाषा का प्रयोग सीख सकते हैं।
सुनने में सहायक उपकरण से बहरा बच्चा सामान्य बच्चों की तरह सुन सकता है।	सुनने में सहायक कोई भी उपकरण श्रवण दोष का पूरी तरह से निराकरण नहीं कर सकता। इनके प्रयोग से केवल मात्र लाभ यह है कि ध्वनियाँ जोर से सुनाई देती हैं।
जिन बच्चों को मिर्गी का दौरा पड़ता है वे प्रायः मानसिक रूप से पिछड़े होते हैं।	मानसिक पिछड़ेपन और मिर्गी रोग वाले बच्चे के बीच कोई संबंध नहीं। मिर्गी रोग वाले बच्चे का मस्तिष्क दूसरे बच्चों की तरह सामान्य हो सकता है।
प्रमास्तिष्कीय घात संसर्ग से होने वाली बीमारी है।	प्रमास्तिष्कीय घात संसर्ग से होने वाली बीमारी नहीं है। यह न तो बेहतर होती है और न बदतर। यह जन्म से पहले, जन्म के दौरान या जन्म के ठीक बाद मस्तिष्क के नष्ट होने का परिणाम है।
अन्धों की अन्य इन्द्रियाँ स्वतः विकसित हो जाती है।	अन्धों में अतिरिक्त छठी इंद्रियाँ नहीं होती। एकाग्रता और सावधानी के द्वारा अन्धे अपनी इंद्रियों के बीच सूक्ष्म भेद करना सीख सकते हैं।

सर्प देवता

किसी दल-दल में दो साँप रहते थे। जब दल-दल सूखने लगी, तो उन्होंने किसी दूसरी जगह जाने की सोची।

छोटे साँप ने बड़े साँप से कहा : "अगर तुम रास्ता दिखाओ और मैं तुम्हारे पीछे चलूँ, तो लोगों को मालूम हो जाएगा कि हम लोग कहीं और जा रहे हैं। रास्ते में कोई न कोई हमें अवश्य मार डालेगा। ज्यादा अच्छा यह होगा कि तुम मुझे अपनी पीठ पर लादकर ले चलो और हम दोनों एक-दूसरे की पूँछ अपने मुँह में डाल लें। तब लोग यह समझेंगे कि हम देवता हैं और हम पर प्रहार नहीं करेंगे।"

इस प्रकार दोनों साँप एक-दूसरे के मुँह में पूँछ डाले सड़क पार कर गए, और हर किसी ने यह कहकर उन्हें रास्ता दे दिया : "इन्हें मत छुओ ! ये दोनों देवता हैं।"

स्वार्थ और संगठन

चार कुत्तों ने विचार किया कि अब हम अपना संगठन करेंगे, बिना संगठन के हमें जो चाहे मार देता है। जो हमारा तनिक भी अपमान करेगा उस पर हम अपने कुत्तों की फौज से चढ़ाई कर देंगे, एक-दूसरे से कभी लड़ेंगे झगड़ेंगे नहीं। बातों को पेड़ पर बैठा एक कौआ सुन रहा था। उसने गोश्त का एक टुकड़ा नीचे डाल दिया। उस टुकड़े के पीछे चारों कुत्ते लड़ने लगे। कौअे को हँसी आ गई। हँसी आने पर कुत्तों ने तनिक ध्यान नहीं दिया। कौआ उड़ गया यह सोच कर कि जहाँ स्वार्थ होता है वहाँ संगठन नहीं हो सकता।

लाल बुझक्कड़ कहते हैं...

"कुछ सीखा हमने
यानि
कुछ बदला हमने"

माचिस वाला खिलौना

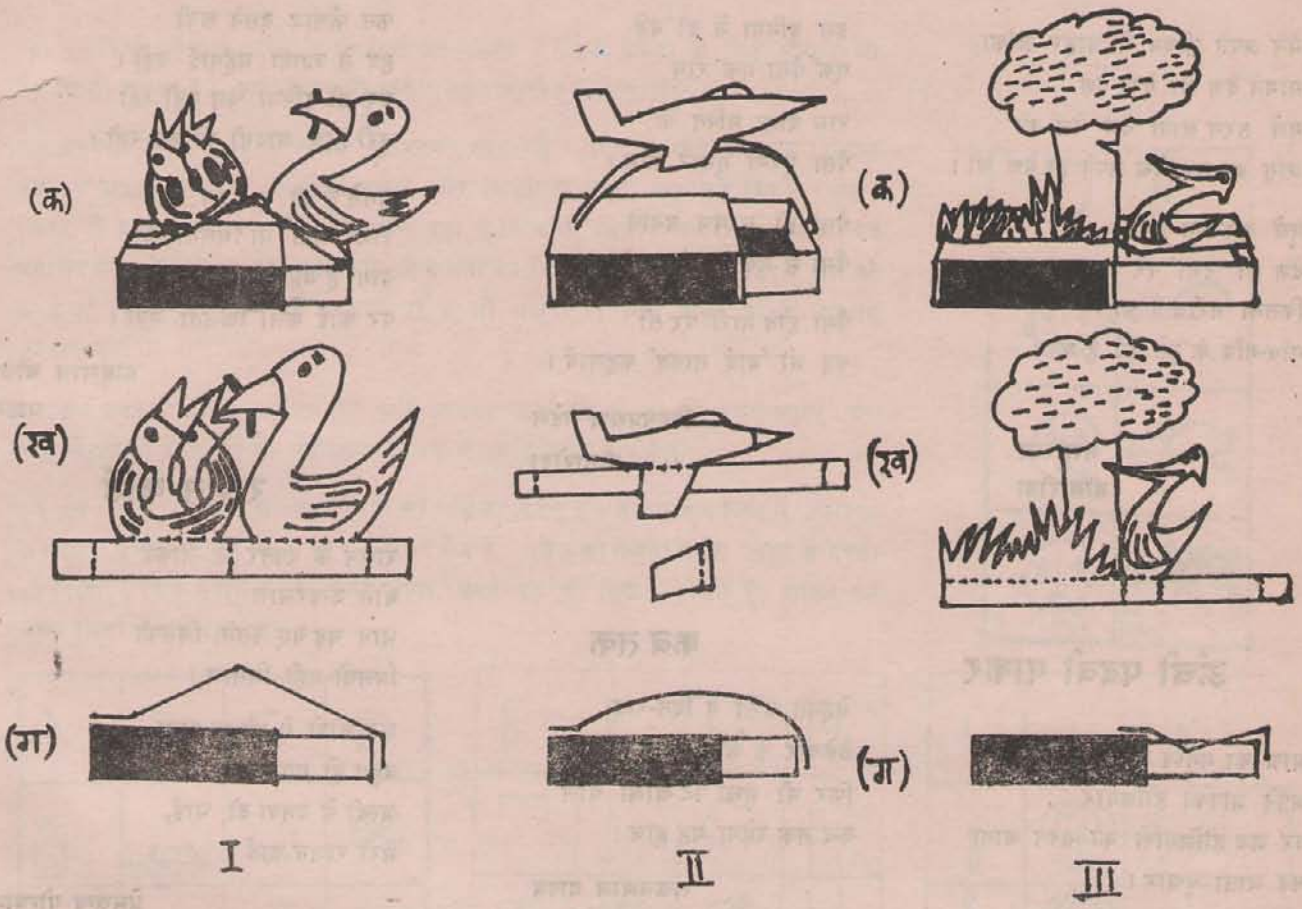

एक खाली माचिस, पोस्टकार्ड, ब्लेड और थोड़ी-सी गोंद से एक खिलौना बनाया जा सकता है। आप बच्चों से यह खिलौना बनवा सकते हैं। यहाँ पर तो केवल कुछ उदाहरण ही दिए हैं। आप इससे कई तरह के प्रयोग कर सकते हैं। जो नए-नए प्रयोग इससे करें वे हमें भेज दीजिए...

एक पोस्टकार्ड लो। उसको नीचे दिए चित्र-I (ख) के अनुसार काटो।

अब इस कटे हुए चित्र को बिन्दु वाली लकीरों पर मोड़ लो।

एक माचिस की खाली डिब्बिया लो। कटे हुए कार्ड चित्र को चित्र–I (ग) के अनुसार माचिस की डिब्बिया पर चिपका दो। कार्ड चित्र के नीचे वाली पट्टी का एक सिरा बाहर वाले खोखे के ऊपरी सतह पर चिपका दो। दूसरे सिरे को अन्दर वाले खोखे पर चिपका दो।

अब माचिस की डिब्बिया खोलने-बन्द करने पर देखो क्या होता है?

वैसे ही नीचे दिए दो और चित्रों को काट कर दूसरी डिब्बियों पर चिपका दो। चाहो तो तुम खुद नए-नए चित्र बनाकर यह माचिस वाले खिलौने बना सकते हो।

एकलव्य : दो कविताएँ

(1)

एकलव्य नहीं !
अब द्रोणाचार्य एकलव्य से डरता है।
'अंगूठा' दिखाकर परीक्षा में नकल करता है।

(2)

एकलव्य !
आज डरा हुआ चुपचाप खड़ा है,
क्योंकि,
द्रोणाचार्य (गुरु) भी अंगूठा न माँगकर
'मुद्रा' पर अड़ा है।

राधा बल्लभ तिवारी
शा. बालक शाला, इटारसी

मेरा देश मेरा जीवन

मैंने अपने जीवन से बाहर झाँका
सामने देश था मेरा देश
मुझे तरस आया देख देश को
आँसू आ गए देख अपने ही वेश को।

मुझे अफसोस हुआ
देश की 'दशा' पर
कितना गरीब है यह
गाँव-गाँव के टूटे फूटे हैं घर।

मंशाराम
बीसारोड़ा

ऊँची पदवी पाकर

आज का मनुष्य लगा समझने
अपने आपको होशियार
पर जब होशियारी का वक्त आता
चढ़ जाता बुखार।

ऊँची पदवी पाकर
छोटों को दबाते हैं
छोटों से झगडा करके
खुद इधर उधर भाग जाते हैं
बुद्धिमान समझकर खुद को
अपनी बढ़ाता शान
समझते अपने को भगवान।

शान बढ़ाता शैतानी करता
नहीं कुछ और अच्छा काम
अपने आप शैतानी करके
सोचता प्रसिद्ध हुआ नाम।

कैलाश यादव
कुलामड़ी

पैसा ही सरपंच बनावें

इस दुनिया में दो बड़े
एक पैसा एक राम
राम दाता मुक्ति के
पैसा तुरन्त सुधारे काम।

पैसा ही सरपंच बनावे
पैसा से मूर्ख चतुर कहावे।

पैसा होवे नारी पर तो
वह भी 'बाई साहब' कहलावे।

विष्णुप्रसाद पटेल
बीसारोड़ा

कब तक

मेहनत करते ये दिन-रात
ठेकेदार के जोड़ के हाथ
फिर भी भूखा पेट खाली थाल
कब तक रहेगा यह हाल।

लखनलाल यादव
रोहना

परिवर्तन

समय बदल रहा
परिस्थिति बदल रही
नीतियाँ बदल रही
इन्सान बदल रहा
मौसम बदल रहा
पर गरीब
और अधिक गरीबी में ढल रहा।

गनपतलाल विश्वकर्मा
रोहना

हद से महँगाई बढ़ी

फन फैलाय डसने खड़ी
हद से ज्यादा महँगाई बढ़ी।
घर की दुनिया चल नहीं रही
बुरी हाल आदमी की कट रही।

घूमते हैं बी.ए.,एम.ए.
रोजी रोटी भी मिलती नहीं
बाग है यह कितना सुन्दर
पर कोई कली खिलती नहीं।

बाबूलाल चौधरी
घाटली

राशन कार्ड

राशन के दफ्तर में जाकर
बोले बन्दरलाल
भाव चढ़ गए इतने, जिसकी
मिलती नहीं मिसाल।

अब चोरी से भोजन पाना
बहुत हो गया हार्ड,
जल्दी से बनवा दो, भाई,
मेरी राशन कार्ड।

प्रेमचन्द गोस्वामी

नौकर की दशा

देते कभी न पैसा
काम कराए दिन-रात।
भोजन तक ढंग का नहीं
बस खिलाएँ कोरा भात
दीवाली आती है तब जाकर
देते हैं नोट दस का
काम कर-कर टूट रहा हूँ
अब यह काम नहीं मेरे बस का।

घनश्याम चौधरी
व्यावरा

[बाल समाचार से साभार]

★

अक्षर चित्र

क्या बच्चों को रोचक तरीके से सिखाया जा सकता है? क्या बच्चों के लिए सीखना भी मजेदार हो सकता है? क्या सीखने की प्रक्रिया बहुआयामी हो सकती है?

जब बच्चे छोटे होते हैं तो वे अक्षरों को रटकर सीखते हैं। लगभग मशीन की तरह। पिछले अंकों में पाठकों द्वारा भेजे हिन्दी के अक्षरों और गिनती से बनाए गए चित्र दिए थे। अक्षर चित्रों की इस शृंखला देने के पीछे उद्देश्य रहा है कि बच्चे निर्जीव अक्षरों से सजीव चित्र बनाकर देखें। जिससें उनकी चित्र बनाने की क्षमता का विकास हो और एक रोचक खेल की तरह यह सहजता से कर सकें। साथ ही वे भी अक्षरों या अन्य आकृतियों में नए-नए आकार खोजें।

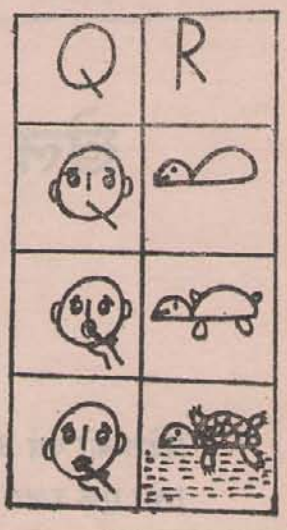

क्या इस तरह का प्रयोग कहीं हुए हैं? यदि आपकी जानकारी हो तो हमें जरूर बताएँ। इस तरह के प्रयोगों में बच्चों की प्रतिक्रिया जानने में हमारी बहुत रुचि है।

हम अब अंग्रेजी के अक्षरों से अक्षर चित्रों की शृंखला दे रहे हैं। होशंगाबाद जिले में टिमरनी के शिक्षक **उमेश चौहान** ने ये चित्र बनाकर भेजे हैं। उमेश का कहना है कि "बहुत से बच्चों को गिनती से चित्र बनाने में बड़ा मजा आया, उनके पत्र भी मिले।" देखते हैं, शायद इन अक्षर चित्रों में भी मजा आए।

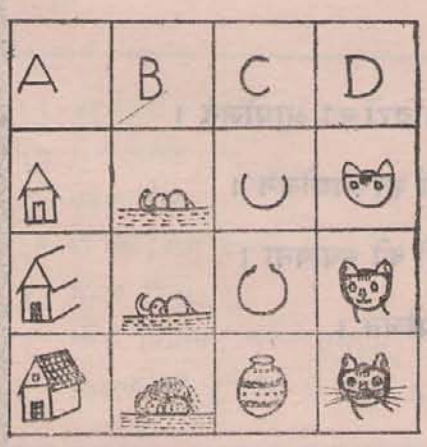

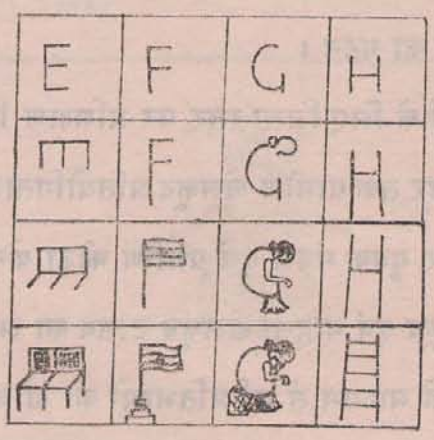

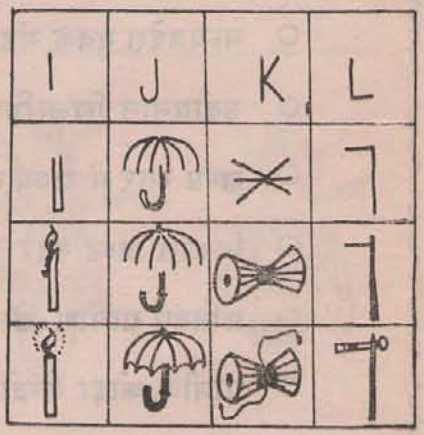

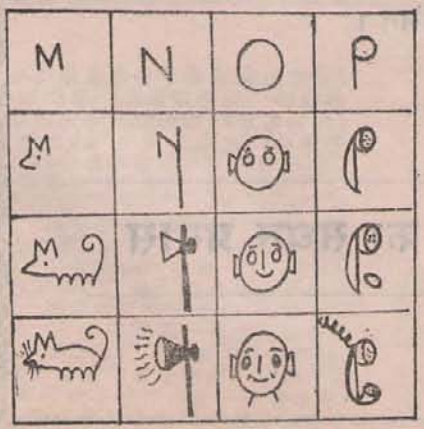

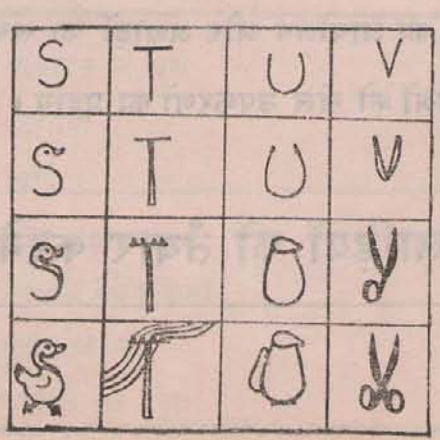

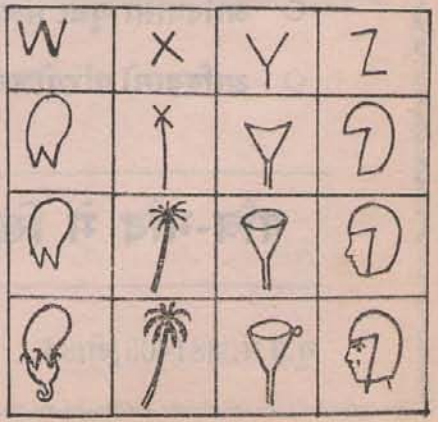

मध्यप्रदेश
के
ग्रामीण तथा आदिवासी अंचलों
में
खेल और खिलाड़ियों के विकास
की
अनेक योजनाएँ

- प्रदेश को वर्ष 83-84 में राष्ट्रीय ग्रामीण खेल प्रतियोगिताओं में चार स्वर्ण पदक तथा एक रजत पदक प्राप्त ।
- मध्यप्रदेश युवक मंडल का गठन ।
- उदीयमान खिलाड़ियों के लिए जिला स्तर पर प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन ।
- खण्ड स्तर से राज्य स्तर तक ग्रामीण खेलकूद प्रतियोगिताओं का आयोजन ।
- विकास खण्ड स्तर पर युवक मंडल एवं ग्रामीण क्रीड़ा केन्द्रों की स्थापना ।
- प्रतिवर्ष ग्रामीण खेलकूद एवं महिला खेलकूद उत्सव का आयोजन ।
- ग्रामीण क्रीड़ा केन्द्रों के माध्यम से नई प्रतिभाओं की खोज ।
- आदिवासी युवा मेलों का आयोजन और अखाड़ों का संचालन ।
- आदिवासी परियोजनाओं को खेल उपकरणों का प्रदाय ।

गाँव-गाँव में खिलाड़ियों को तैयार करने का सघन प्रयास

सू.प्र.सं./881408/डी/84

सहयोग राशि : एक रुपया (विद्यार्थी—पचास पैसे) डाक खर्च अतिरिक्त

एकलव्य, E/1-208, अरेरा कॉलोनी, भोपाल द्वारा प्रकाशित एवं नईदुनिया प्रिन्टरी, इन्दौर–9 द्वारा मुद्रित ।